

रवीन्द्र-साहित्य

चौथा भाग

अनुवादक
धन्यकुमार जैन

हिन्दी-ग्रन्थागार
पी-१५, कलाकार स्ट्रीट, कलकत्ता-७

रचना-सूची

पहला भाग :—दो बहन (उपन्यास), सौगात, घाटकी बात, कंकाल, स्वर्णमृग, बदलीका दिन, (कहानियाँ), हिन्दू-मुसलमान (निबन्ध)

दूसरा भाग :—प्राण-मन, प्यासा पत्थर, दृष्टिदान, चेन्ना फूः, जिन्दा और मुरदा, एक रात, बरसाती कहानी, मुक्तिका उपाय, दुलहिन, एक चितवन (कहानियाँ)

तीसरा भाग :—सड़ककी बात, दालिया, त्याग, निशीथमें, मणिहीन, सुभा, सम्पादक, छोटीसी पुरानी कहानी, दुराशा, देन-लेन, कहानी (कहानियाँ)

प्रकाशक :—धन्यकुमार जैन, 'हिन्दी-ग्रन्थागार'
पी-१५, कलाकार स्ट्रीट, बड़ाबाजार, कलकत्ता

मुद्रक, हजारीलाल शर्मा, हिन्द प्रेस ऐण्ड पब्लिकेशन
३६, बाराणसी घोष स्ट्रीट, कलकत्ता।

रवीन्द्र-साहित्य

चौथा भाग

'फुलवाड़ी'

उपन्यास

'सम्पत्ति-समर्पण'

'बाकायदा उपन्यास'

'दीवार'

कहानियाँ

'ढकन'

निबन्ध

धन्यकुमार जैन

हिन्दी-हिन्दुस्थानीमें
महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुरका
सम्पूर्ण साहित्य एकसाथ एक जगह
मिल सके इस उद्देश्यसे यह
ग्रन्थमाला प्रकाशित की जा रही है
आशा है
सुरुचि-सम्पन्न पाठक-पाठिकाएँ और
पुस्तकालय इसे अवश्य अपनायेंगे

मूल्य दो रुपया
जिल्दका ।) ज्यादा

फुलवाड़ी

'मालंच'

१

नीरजा रोगशय्यापर अधलेटी हालतमें पड़ी है, पीठके पीछे तल-ऊपर कई तकिये लगाकर ऊँचा कर दिया गया है। पैरोंपर सफेद रेशमी चादर पड़ी हुई है; ऐसी लगती है जैसे हलके बादलोंके नीचे तीजकी रातकी फीकी चाँदनी हो। उसका रंग हो गया है शंख जैसा फीका, चूड़ियाँ ढीली पड़ गई हैं, दुबली-पतली कमजोर बाँहोंकी नीली नसें चमक रही हैं, पलकोंकी घनी बरुनियोंके ऊपर-नीचे छा गई है रोगकी कालिमा।

सफेद संगमरमरका फर्श है; दीवारपर रामकृष्ण परमहंसकी तसवीर टँगी है। कमरेमें एक पलंग है, एक तिपाई और दो बेंतके मोढ़े; एक कोनेमें है कपड़े टाँगनेकी अलगनी। इसके सिवा और कोई खास असबाब नहीं। दूसरे कोनेमें पीतलकी फूलदानीमें रजनीगन्धा फूलोंका गुच्छा है; उसकी सुगन्ध कमरेकी बन्द हवामें बँधी हुई महक रही है।

पूरबकी खिड़की खुली है। उसमेंसे नीचेके बगीचेमें दिखाई दे रहा है ऑरकिडका घर, जिसपर चारों तरफसे अपराजिता-लता और फूल छा रहे हैं। पास ही झीलके किनारे पानीका पम्प चल रहा है, जोरोंसे पानी निकल-निकलकर नालोंमें होता-हुआ बगीचेकी हर कियारीमें जा रहा है। बौरोंकी सुगन्धसे महकते हुए आमके बगीचेमें कोयल पागल होकर बोल रही है।

बगीचेकी ड्योढ़ीपर टन-टन घंटा बज उठा दोपहरका। दोपहरकी कड़ाकेकी धूपके साथ उसका सुर मिलता है। तीन बजे तक मालियोंकी छुट्टी है। घंटा बजनेके उस शब्दसे नीरजाकी छातीके भीतर एक व्यथा-सी बज उठी, मन उसका उदास हो गया। आया आई दरवाजा बन्द करनेके लिए। नीरोने कहा—"रहने दे।" और उन पेड़ोंकी तरफ देखती रही जिनके नीचे कहीं धूप और कहीं छाया बिखर रही थी।

फूलोंके रोजगारमें काफी नाम कमाया है उसके पति आदित्यने। ब्याहके बादसे नीरजा और उसके पतिका प्रेम नाना धाराओंमें बहता-हुआ इस बगीचेकी सेवाके काममें आ मिला है। यहाँके हर फूल और हर पत्तीमें दोनोंके सम्मिलित आनन्दने नया-नया रूप लिया है नये-नये सौन्दर्यमें। खास-खास डाक आनेके दिन प्रवासी जैसे अपने मित्रोंकी चिट्ठियोंका इन्तजार करता है, वैसे ही हर ऋतुमें यह दम्पति अलग-अलग फूलोंकी अभ्यर्थना करती रही है।

नीरजाको आज बार-बार उस दिनकी तसवीर याद आ रही है। ज्यादा दिनकी बात नहीं, फिर भी ऐसा लगता है जैसे बड़े

भारी रेगिस्तानके उस पारका युगान्तरका इतिहास हो वह। बगीचेके पश्चिमकी तरफ बिलकुल किनारेपर बहुत पुराना नीमका पेड़ है। उसकी जोड़का एक और नीमका पेड़ था; वह कबका सूखकर गिर गया है; उसके तनेको चौरस काट-छाँटकर एक छोटी-सी टेबिल बना ली गई है। वहीं बैठकर दोनों सवेरेकी चाय पीया करते थे। पेड़ोंकी संधोंमेंसे छन-छनकर धूप आती और उनके पैरोंपर पड़ती। प्रसाद पानेके लिए मैना और गिलहरी भी हाजिर रहती। चाय पीनेके बाद दोनों मिलकर बगीचेका काम करना शुरू कर देते। नीरजाके सिरपर एक फूलदार रेशमी छतरी रहती और आदित्यके सिरपर सोलेकी टोपी, कमरसे लगी रहती डालियाँ छाँटनेकी बड़ी कैंची। मित्र-दोस्तोंमेंसे कोई आ जाता तो बगीचेके कामके साथ मिल जाता लोक-व्यवहार।

मित्रोंके मुँहसे अकसर सुननेमें आता—"सचमुच तुम्हारा 'डालिया' देखकर तो ईर्ष्या होती है भाई।" कोई-कोई गँवारकी तरह कह बैठता—"यह सूरजमुखीका पेड़ है क्या?" नीरजा बहुत ही खुश होकर कहती—"नहीं नहीं, गेंदा है!" एक दिन, दुनियादारीमें प्रवीणबुद्धि एक महाशय पूछ बैठे—"इतना बड़ा मोतिया-बेला आपने कैसे पैदा कर लिया नीरजा देवी?" आपके हाथमें कोई जादू मालूम होता है। तगर-सा लगता है।" समझ-दारको इसका इनाम मिला। हरिया मालीकी आँखें उपाड़कर हजरत पाँच टब-शुदा बेलाके पौधे ले गये। इस तरह बगीचेमें मित्रोंका आना-जाना बना ही रहता। मित्रोंको साथ लेकर

कुंजकी परिक्रमा चलती रहती, फूलोंके बगीचेमें, फलोंके बागमें, सब्जीके खेतमें। जाते वक्त नीरजा उनको भेंटमें देती टोकनी भरकर गुलाब, मैगनोलिया और कारनेशन-फूलोंके साथ-साथ पपीते नीबू और कैथ। इनके बागका कैथ एक खास चीज समझा जाता है। ऋतुके अनुसार सबके अन्तमें दिया जाता था डाभका पानी। प्यासोंके मुँहसे निकल पड़ता—"कैसा मीठा पानी है।" जवाबमें वे सुनते—"अपने बगीचेका डाभ है।" सभी कहने लगते—"अच्छा, यह बात है!"

उन दिनोंकी याद कर-करके नीरजा उदास होने लगी; खास कर सवेरेके वक्त पेड़के नीचे बैठकर चाय पीनेकी स्मृति, चायके सुगन्धित धुएँके साथ नाना ऋतुओंके फूलोंकी सुगन्ध स्मृति-उसके दीर्घ निश्वासके साथ मिलकर हाय-हाय कर उठी। सुनहले रंगसे रंगीन उन दिनोंको वह गुजरे जमानेके डाकूके हाथसे छीन लाना चाहती है। उसका विद्रोही मन किसीको सामने क्यों नहीं पाता? आखिर इसके लिए जिम्मेदार कौन? कौनसा विश्व-व्यापी लड़कपन है वह? कौनसा विराट पागल है जिसने ऐसी सुन्दर और सम्पूर्ण सृष्टिको इस तरह बिलकुल निरर्थक रूपसे उलट-पुलटकर चौपट कर दिया?

ब्याहके बाद लगातार दस साल तक एकसी सुखकी जिन्दगी बीती है। सहेलियोंने उसपर डाह किया है; मन-ही-मन कहा है, 'उसका जो बजार-भाव है उससे कहीं ज्यादा कीमत मिल रही है उसे।' पुरुष मित्रोंने आदित्यसे कहा है—"लकी डॉग।"

नीरजाकी घर-गृहस्थी या दाम्पत्य-सुखके पालकी नाव पहले

पहले जिस बातसे एक दिन अचानक गहरे पानीमें डूबी, उसकी जड़में थी उनकी 'डॉली' कुतिया। इस घरमें गृहणी आनेके पहले डॉली ही एकमात्र घर-मालिककी साथिन थी। अन्तमें उसकी भक्ति दो भागोंमें विभक्त हो गई, मालिक और मालिकिनमें। इसमेंसे ज्यादा हिस्सा मिला नीरजाको। दरवाजेके पास कोई गाड़ी आई नहीं कि डॉलीका मिजाज बिगड़ उठता। जल्दी-जल्दी पूँछ हिलाकर तुरत आये-हुए पेट्रोल-रथके विरुद्ध वह अपनी आपत्ति जताती रहती। बगैर न्योतेके गाड़ीके अन्दर कूद पड़नेके लिए उसका दुस्साहस तब तक शान्त न होता जब तक कि मालिकिनकी तर्जनी उसे खबरदारका इशारा न कर देती। फिर वह एक लम्बी साँस लेकर अपनी निराशाको पूँछकी कुंडली में घेरे दरवाजेके पास पड़ी रहती। उनके आनेमें देर होती तो मुँह उठाकर हवा सूँघती हुई इधरसे उधर घूमती रहती, मानो अपनी भाषामें वह आकाशसे करुण प्रश्न करती रहती, 'अभी तक आये क्यों नहीं ?'

अन्तमें उस कुतियाको अकस्मात् एक दिन न-जाने क्या बीमारी हो गई कि इन दोनोंके मुँहकी तरफ करुण दृष्टिसे देखती हुई, नीरजाकी गोदमें सिर रखे, वह मर गई।

नीरजामें प्यारकी एक जबरदस्त जिद्-सी थी। उस प्रेमके खिलाफ विधाता तकके हस्तक्षेपकी वह कल्पना नहीं कर सकती थी। अब तक अनुकूल घर-गृहस्थीपर वह निःसंशय होकर विश्वास करती आई है। किन्तु आज डॉलीके लिए भी जब मरना कल्पनातीत-रूपसे सम्भव हो गया तब उसे अपने दुर्गमें

पहला छेद दिखाई दिया। ऐसा लगा कि यह छेद विच्छेदकारी अशुभका पहला प्रवेश-द्वार है। वह सोचने लगी, विश्व-जगतका कार्यकर्ता अव्यवस्थितचित्त है; उसकी मौजूदा कृपापर भी भरोसा नहीं किया जा सकता।

अब तक नीरजाके कोई सन्तान नहीं हुई थी; और न अब किसीको उसकी आशा ही थी। उनके यहाँ गणेश नामका एक लड़का रहता था आश्रित-रूपमें। उस लड़केको लेकर नीरजाकी रुकी हुई स्नेहवृत्ति जब प्रबल होकर खूब आन्दोलित हो उठी और लड़केके लिए भी जब उसकी अपनी अशान्त स्थिति असह्य हो उठी तब अचानक नीरजाके सन्तान होनेकी सम्भावना दिखाई दी। भीतर-ही-भीतर मातृहृदय भर उठा, भावी कालका दिगन्त नव-जीवनके प्रभातकी अरुण आभासे रंगीन हो उठा, पेड़के नीचे बैठी बैठी वह नवआगन्तुकके लिए तरह-तरहके कपड़े सींने और उनपर रेशमका काम करने लगी।

आखिर प्रसवका समय आया। धाय आई; उसने समझ लिया कि सामने सङ्कट तैयार खड़ा है। आदित्य इतना ज्यादा घबरा गया कि डाक्टरको उसे डाट-फाटकारकर अगल रखना पड़ा। डाक्टरोंने आपरेशन किया; और बच्चेको मारकर जच्चाको बचा लिया। उसके बाद फिर नीरजा खाट छोड़कर न उठ सकी। बालूकी शय्यापर सोती हुई वैशाखकी नदीकी तरह उसकी कम-खूनवाली देह थककर खाटपर पड़ी रही। जीवनी-शक्तिकी प्रचुरता बिलकुल खतम हो गई। बिस्तरके सामनेवाली खिड़की खुली है; उसमेंसे गरम-गरम हवाके साथ कभी चम्पाकी

और कभी मुचकुन्द-फूलकी दीर्घ-सासें आ-आकर उससे कुछ पूछ-पूछ जाती हैं; मानो उसके अतीतकालके दूरवर्ती वसन्तके दिन चुपके-चुपके उससे पूछ रहे हों—"कैसी तबीयत है ?"

सबसे ज्यादा उसे तब चोट पहुंची जब देखा कि बगीचेके कामके लिए आदित्यको किसी रिश्तेसे बहन लगनेवाली सरलाको लाना पड़ा है। खुली हुई खिड़कीमेंसे जब भी वह देखती है कि रेशम और अबरकके बेल-बूटेदार ताड़पत्रोंकी छतरी लगाये सरला बगीचेके मालियोंसे काम लेती फिर रही है तब उसके लिए अपने अकर्मण्य हाथ-पैरोंको बरदाश्त करना मुश्किल हो जाता है। और मजा यह कि जब वह तनदुरुस्त थी तब हर ऋतुमें इसी सरलाको न्योता देकर बुलाया करती थी नये पौधे लगानेके उत्सवमें। सवेरेसे काम शुरू हो जाता था। उसके बाद झीलमें तैरना-नहाना, फिर पेड़के नीचे बैठकर केलेके पत्तोंपर खाना-पीना होता था; पासमें ग्रमोफोनपर देशी-विदेशी संगीत चलता रहता था। मालियोंको मिलता था दही-चिउड़ा और सन्देश-रसगुल्ला। इमलीके पेड़के नीचेसे उनकी चिल्लपों सुनाई दिया करती थी। धीरे-धीरे सूरज डूबने लगता, झीलका पानी शामकी हवासे सिहर उठता, चिड़ियाँ चुहचुहाने लगतीं मौलसिरीके पेड़पर, इस तरह आनन्दमय थकानके साथ होता था दिनका अन्त।

नीरजाके मनके अन्दर रस होता था अत्यन्त मीठा; फिर आज क्यों हो गया वह कडुआ? आजकलका कमजोर शरीर जैसे उसके लिए अपरिचित है वैसे ही अबका तीव्र नीरस स्वभाव भी उसका परिचित स्वभाव नहीं। उस स्वभावमें कोई दाक्षिण्य

नहीं, कोई उदारता नहीं। एक-एक बार यह दीनता उसके सामने स्पष्ट हो उठती है, मनमें लज्जा जाग उठती है, लेकिन फिर भी वह अपनेको सम्हाल नहीं सकती। डर लगता है, आदित्यकी दृष्टिमें उसकी यह दीनता शायद पकड़ी जा चुकी हो, किसी दिन शायद प्रत्यक्ष देखेंगे कि नीरजाका आजकलका मन चमगादड़की चोंचसे घायल फलकी तरह भद्दा हो गया है, अच्छे कामके अयोग्य।

दोपहरका घंटा बजा। माली चले गये। सारा बगीचा सूना हो गया। नीरजा इतनी दूरकी ओर देखती रही जहाँ दुराशाकी मरीचिका भी आभास नहीं, बल्कि सिर्फ छायाहीन धूपकी शून्यतापर शून्यता चलती ही चली गई है।

२

नीरजाने पुकारा—"रोशनी!"

आया कमरेके भीतर दाखिल हुई। अधेड़ उमर है, बालोंमें कुछ-कुछ सफेदी आने लगी है, हाथोंमें पीतलके मोटे कड़े हैं, घाघराके ऊपर दुपट्टा ओढ़े है। दुबली-पतली इतनी कि हड्डियाँ ही हड्डियाँ नजर आती हैं, देहकी चाल-ढाल और चेहरेके भावमें एक तरहकी स्थायी कठोरता है। मानो अपनी अदालतमें वह इन लोगोंकी घर-गृहस्थीके मामलेमें खिलाफ फैसला देना चाहती हो। उसने नीरजाको अपने हाथसे पाला-पनासा है, उसकी सारी

ममता उसीपर है। जो उसके पास आते-जाते हैं, यहाँ तक कि नीरजाके पति भी, सबके बारेमें उसके मनमें एक तरहकी सतर्क विरुद्धता है।

कमरेमें आकर उसने पूछा—"पानी ला दूं बिटिया ?"

"नहीं, बैठ जा।"

आया जमीनपर बैठ गई।

नीरजा बात करना चाहती है, इसीलिए आयाको बुलाया है उसने। आया उसकी स्वगत बातोंकी वाहिका है।

नीरजाने कहा—"आज खूब सवेरे ही दरवाजा खुलनेकी आहट सुनी थी मैंने।"

आया कुछ बोली नहीं, पर उसके नाखुश चेहरेका भाव यह था कि 'सुनती कब नहीं हो !'

नीरजाने बेमतलबका सवाल किया—"सरलाको लेकर शायद बगीचेमें गये होंगे ?"

बात उसे निश्चितरूपसे मालूम थी, फिर भी, रोज ही वही एक प्रश्न। आयाने एक बार हाथ उलटकर मुँह बनाया और चुप रह गई।

नीरजा बाहरकी ओर देखती हुई अपनी धुनमें कहती गई—"मुझे भी वे खूब सवेरे जगा लिया करते थे, मैं भी उनके साथ बगीचे जाया करती थी बगीचेका काम करने। थोड़े ही दिनकी तो बात है।"

कोई भी उससे इस बातकी उम्मीद नहीं रखता कि इस तरह की चर्चामें और-किसीका शरीक होना उसे पसन्द है, फिर भी,

आयासे रहा नहीं गया ; वह बोल उठी—"उनके बिना शायद बगीचा सूख ही जाता !"

नीरजा कहती ही चली गई—"ऐसा कोई दिन नहीं था जब न्यू-मारकेटको सवेरेका फूलोंका चलान मैंने न भेजा हो। ठीक वैसा ही फूलोंका चलान आज भी गया था, मैंने गाड़ीकी आवाज सुनी है। आजकल चलानको कौन देखा करता है रोशनी ?"

इस जानी हुई बातका आयाने कुछ उत्तर नहीं दिया ; ओठ चबाकर बैठी रही।

नीरजा आयासे कहने लगी—"और चाहे जो भी हो, जब तक मैं थी, माली काममें चोरी नहीं कर सकते थे।"

आया भीतर-ही-भीतर मन मसोसकर रह गई, बोली—"वे दिन नहीं रहे अब, अब तो दोनों हाथोंसे लूट चल रही है।"

"अच्छा ?"

"मैं क्या झूठ कह रही हूं ? नये-बजार तक अब कितने फूल पहुंच पाते हैं ? जमाई-बाबू बाहर गये नहीं कि पिछवाड़ेके दरवाजेपर मालियोंका बजार बैठ जाता है फूलोंका।"

"कोई देखता-भालता नहीं ?"

"किसे गरज पड़ी है देखने-भालनेकी ?"

"जमाई-बाबूसे तू कहती क्यों नहीं ?"

"मैं कौन होती हूं कहनेवाली ? अपनी इज्जत अपने हाथ है। तुम क्यों नहीं कहतीं ? आखिर है तो सब तुम्हारा ही।"

"होने दे, जाने दे, अच्छा ही है। चलने दे इसी तरह। आखिर जिस दिन सब चौपट हो जायगा तब तो होश आयेगा !

किसी-न-किसी दिन तो वक्त आयेगा ही समझनेका कि अपनी मासे सौतेली माका प्यार बड़ा नहीं होता। चुप बनी रह, तुझे क्या पड़ा है!"

"लेकिन यह भी तुमसे कहे देती हूं बेटी, तुम्हारा यह हरिया माली किसी कामका आदमी नहीं।"

हरियाका कामसे जी चुराना ही आयाकी नाराजगीका एकमात्र कारण हो सो बात नहीं, बल्कि उसका सबसे बड़ा कारण यह है कि हरियापर नीरजाका स्नेह बेजा तौरसे बढ़ता जा रहा है।

नीरजा बोली—"मालियोंको मैं दोष नहीं देती। नई मालिकिन को वे कैसे बरदाश्त कर सकते हैं? पीढ़ियोंसे वे यही काम करते आये हैं, और तुम्हारी जीजी-बाईकी है किताबी विद्या, उन पर मनमाना हुक्म चलानेसे कैसे काम हो सकता है? हरिया ऊटपुटांग बातोंको नहीं मानना चाहता, मेरे पास आकर शिकायत किया करता है। मैं उससे कहती हूं, तू सुनी अनसुनी कर जाया कर, तुझे कामसे काम—"

"उस दिन जमाई-बाबू तो उसे निकाले दे रहे थे।"

"क्यों, किसलिए?"

"वो बैठा-बैठा बीड़ी पी रहा था और उसकी आँखोंके सामने गाय घुसकर पौधे खा रही थी। जमाई-बाबूने कहा कि 'गायको उठके निकालता क्यों नहीं?' उसने मुँहपर जवाब दिया, 'मैं निकालूंगा गाय! गाय ही ऐसी है कि मुझे निकाल बाहर करे। जान सबको प्यारी होती है बाबू सा'ब!' उन्हें गुस्सा आ गया।"

सुनकर नीरजा हँस दी, बोली—"उसकी बोली ही ऐसी है। खैर जो हो, वो मेरे हाथका बनाया हुआ आदमी है।"

"जमाई-बाबू तुम्हारी ही खातिर तो उसे बरदाश्त कर लेते हैं। चाहे गाय घुस आवे, चाहे बकरी चर जाय, उसे कुछ परवाह थोड़े ही है। इतना सर चढ़ाना मुझे तो बिलकुल पसन्द नहीं।"

"तू चुप रह रोशनी। क्यों नहीं निकालता सो उसका जी ही जानता है। मुझे सब खबर है। उसके मनमें आग-सी जल रही है। वो जा रहा है हरिया; बुला तो उसे।"

आयाकी आवाज सुनकर हरिया लौट पड़ा। अन्दर आते ही नीरजाने उससे पूछा—"क्यों रे, आज भी कोई नया हुक्म मिला या नहीं?"

हरिया बोला—"मिलता क्यों नहीं। सुनके हँसी भी आती है, और भीतरसे जी भी दुख पाता है।"

"क्या है, बता तो सही?"

"यही कि सामने जो मल्लिकोंका पुराना मकान तोड़ा जा रहा है, वहाँसे ईंट-पत्थर लाकर पेड़ोंके नीचे बिछा दो। मैंने कहा, धूपके वक्त गरम लगेगी पेड़ोंको। पर कौन सुनता है वहाँ!"

"बाबू साहबसे क्यों नहीं कहता?"

"बाबू सा'बसे कहा था। उलटा उन्होंने मुझे ही डाट दिया, 'चुप रह तू।' भाभी सा'ब, अब तो मुझे छुट्टी दे दो, अब नहीं सहा जाता मुझसे।"

"हूं। मैं देख रही थी, इसीसे तू तब रबिश ढो-ढोके ला रहा था।"

"भाभी सा'ब, तुम मेरी हमेशाकी मालिकिन हो। तुम्हारी ही आँखोंके सामने सिर नीचा कर दिया मेरा। अपने देशके आदमियोंके आगे मैं कैसे मुँह दिखाऊंगा, मेरी जात चली जायगी। मैं क्या कुली-मजूर हूं ?"

"अच्छा अभी तू जा। अब जब कोई तुझसे ईंटें ढोनेको कहे, तो मेरा नाम लेकर कहना, मैंने मना कर दिया है। क्यों खड़ा क्यों रह गया ?"

"देशसे चिट्ठी आई है, हलका बैल मर गया है।"

कहकर वह सिर खुजाने लगा।

नीरजाने कहा—"नहीं, मरा नहीं, ठीक तेरी ही तरह जिन्दा घूम-फिर रहा है। ले जा, दो रुपया ले जा, ज्यादा बकबक मत कर।"—कहते हुए उसने तपाईपर रखे हुए पीतलके बक्समेंसे रुपये निकाल कर दे दिये।

"और क्या चाहिए ?"

"वहूके लिए एक पुरानी धोती। देशमें जयजयकार मनायेंगे तुम्हारी सब।"—इतना कहकर वह पानसे रंगे हुए दाँत फाड़कर हँस दिया।

नीरजाने हुक्म दिया—"रोशनी, अलगनीकी वो साड़ी उतार कर दे दे इसे।"

रोशनी जोरसे सिर हिलाकर बोल उठी—"क्यों दे दूं, तुम्हारी ढकाई साड़ी है वो !"

"ढकाई ही सही। मेरे लिए आज सभी साड़ी एकसी हैं, अब कौन पहनता है !"

रोशनीने कड़ा चेहरा बनाकर कहा—"नहीं, सो नहीं, सो नहीं होनेका। देनी ही है तो इसे तुम अपनी लाल किनारीकी मिलकी साड़ी दे दो। देख हरिया, बिटियाको अगर तू इस तरह तंग करेगा तो बाबूसे कहकर मैं तुझे यहाँसे निकलवाके दम लूंगी।"

हरियाने नीरजाके पाँव छूकर रोना शुरू कर दिया—"मेरी तकदीर फूट गई भाभी सा'ब!"

"क्यों, क्या हो गया?"

"आयाजीको मैं मौसी कहता हूं। मेरे मा नहीं है, अब तक मैं समझता था कि इस कमबख्तको आयाजी प्यार करती हैं। आज भाभी सा'ब, तुम्हारी दया हुई तो आयाजी बीचमें अडंगा डाल रही हैं। किसीका दोष नहीं, मेरी ही तकदीर खोटी है। नहीं तो हरियाको गैरोंके हाथ सौंपकर तुम खाटपर पड़ी रहो!"

"अरे तू डरता क्यों है, तेरी मौसी तुझे भीतरसे चाहती है। तेरे आनेके पहले वह तेरा ही गुन गा रही थी। रोशनी, दे दे, दे दे। बगैर लिये टरेगा थोड़े ही; यहीं पड़ा रहेगा धरना दिये।"

बगैर मनके मजबूरीके साथ आयाने साड़ी उठाकर हरियाके आगे पटक दी। हरियाने उसे उठाकर मालिकिनको प्रणाम किया। फिर खड़ा होकर बोला—"इस अंगौछेमें लपेटे लेता हूं, भाभीजी। मेरे हाथ मैले हैं, दाग लग जायगा।" और हुक्मकी बगैर बाट देखे ही अलगनीसे तौलिया उठाकर उसमें साड़ी लपेटके चल दिया जल्दीसे।

नीरजाने आयासे पूछा—"अच्छा आया, तुझे ठीक मालूम है बाबू चले गये बाहर ?"

"अपनी आँखोंसे देखा है मैंने। कितनी जल्दी थी जानेकी! जल्दीमें टोपी लेना भी भूल गये।"

"आज यह पहला ही मौका है। मेरे सवेरेके फूल बगैर दिये ही चले गये! अब दिनपर दिन बढ़ती ही जायगी लापरवाही उनकी। अन्तमें मैं जा पड़ूंगी घरके कूड़े-करकटमें, जहाँ चूल्हेकी बचीखुची राख फेंकी जाती है।"

सरलाको आते देख आया मुँह बिचकाकर चली गई।

सरला कमरेमें दाखिल हुई। उसके हाथमें था एक ऑरकिड, सफेद फूल है, पपड़ियोंके ऊपरके हिस्सेपर बैंगनी रंगकी रेखा है। ऐसा लगता है जैसे पंख पसारे कोई तितली बैठी हो। सरलाका छरछरा बदन है, कद लम्बा, रंग साँवला, देखते ही सबसे पहले नजर पड़ती है उसकी चमकती हुई बड़ी-बड़ी करुण आँखोंपर। मोटी खादीकी साड़ी पहने है, जूड़ा ढीला और बगैर जतनके कन्धे तक उतर आया है। असज्जित देहने यौवनके समागमको अनादृत कर रखा है।

नीरजाने उसके मुँहकी तरफ देखा नहीं। सरलाने आहिस्ते से फूल उसके बिस्तरपर रख दिया।

नीरजाने अपनी नाराजगीको बगैर छिपाये ही कहा—"किसने कहा लानेको ?"

"आदित्य भाई साहबने।"

"खुद क्यों नहीं आये ?"

"न्यू-मार्केट जानेकी जल्दी थी उन्हें, चाय पीकर तुरत ही चले गये।"

इतनी जल्दी किस बातकी ?"

"कल रातको आफिसका ताला टूट गया, चोरी हो गई है।"

"क्या किसी तरह पाँच मिनटका भी समय न निकाल सकते थे !"

"कल रातको तुम्हारी तकलीफ बढ़ गई थी। भोरमें जरा आँख लगी थी। दरवाजे तक आकर लौट गये। मुझसे कह गये हैं, अगर दोपहर तक वे न लौट सकें तो फूल मैं ही तुम्हें दे दूं।"

दिनका काम शुरू करनेसे पहले आदित्य रोज एक चुना हुआ बढ़िया फूल स्त्रीके बिस्तरपर रख जाया करता है। नीरजा प्रति दिन उसके इन्तजारमें रहती है। आजके दिनका वह खास फूल आदित्य सरलाके हाथमें दे गया। यह बात उसके मनमें नहीं आई कि फूल देनेकी खास कीमत उसके अपने हाथसे देनेमें है। यों तो नलमें भी गंगाका पानी है, पर उसमें उसकी सार्थकता कहाँ है ?

नीरजाने फूलको अवज्ञाके साथ अलग कर दिया; बोली— "जानती हो मार्केटमें इस फूलकी कीमत क्या है ? भेज दो इसे वहीं, फजूलमें बरबाद करनेकी जरूरत नहीं।"

कहते-कहते उसका गला भर आया।

सरला समझ गई बातको। और यह भी समझ गई कि जवाब देनेसे दर्दका जोर बढ़ेगा ही, घटनेका नहीं। चुपचाप

खड़ी रही वह। थोड़ी देर बाद नीरजा खामखाह पूछ बैठी—"जानती हो इस फूलका नाम क्या है ?"

अन ोता अगर कह देती कि 'नहीं जानती', पर शायद उसके स्व भिमानको धक्का लगा, बोली—"एमारिलिस।"

नीरजा व्यर्थ ही गरम हो उठी, डाटकर बोली—"बड़ी जानती हो ! इसका नाम है ग्रैण्डिफ्लोरा।"

सरला मुसकरा दी, बोली—"होगा।"

"होगाके मानी ? है। यही नाम है इसका। क्या तुम यह कहना चाहती हो कि मैं नहीं जानती ?"

सरलाको मालूम था कि जान-बूझकर नीरजाने गलत नाम लेकर उसकी बात काटी है; दूसरेको जलाकर अपनी जलन मिटानेकी गरजसे। वह चुपचाप हार मानकर बाहर चली जा रही थी कि नीरजाने उसे रोकते हुए कहा—"सुनो। क्या कर रही थीं सवेरेसे, कहाँ थीं अब तक ?"

"ऑरकिडके घरमें।"

नीरजा उत्तेजित हो उठी, बोली—"ऑरकिड-कुञ्जमें तुम बार-बार क्यों जाती हो, ऐसी क्या जरूरत है ?"

"पुराने ऑरकिड चीरकर नये ऑरकिड लगानेके लिए आदित्य भाई साहब कह गये थे।"

नीरजा डाटके स्वरमें बोल उठी—"अनाड़ीकी तरह सब बरबाद कर दोगी तुम। मैंने अपने हाथसे हरिया मालीको सिखाकर तैयार किया है, उसे हुक्म दे जाते तो क्या उससे नहीं होता ?"

इसपर कोई जवाब नहीं चल सकता। इसका अकपट उत्तर यह था कि नीरजाके हाथमें जब काम था तब हरिया माली अच्छी तरह काम करता था, पर सरलाके हाथमें जबसे काम आया है तबसे वह कामचोर हो गया है। यहाँ तक कि उसकी लापरवाही करके वह अपमान ही करता रहता है।

मालीने इतना समझ लिया था कि इस जमानेमें ठीक तरहसे काम न करनेसे ही उस जमानेकी मालकिन खुश रहेंगी। ऐसा हो गया जैसे कालेज बायकाट करके पास न-करनेकी कीमत डिग्री पानेकी अपेक्षा बढ़ गई हो।

सरला नाराज हो सकती थी, पर हुई नहीं। वह समझती है कि भाभीकी छातीके भीतर दर्द टीस मार रहा है। निःसंतान माके सारे हृदयको जिस बगीचेने घेर रखा है वह इतना पास है और फिर भी वह उससे निर्वासित है। आँखोंके सामने ऐसा निष्ठुर विच्छेद। नीरजाने कहा—"कर दो बन्द, उस खिड़कीको बन्द कर दो।"

सरलाने खिड़की बन्द करके पूछा—"अब नारङ्गीका रस ले आऊँ?"

"नहीं, कुछ नहीं लाना होगा, अब जा सकती हो तुम।"

सरलाने डरते-डरते कहा—"मकरध्वज खानेका वक्त हो गया है।"

"नहीं, जरूरत नहीं मकरध्वजकी। तुम्हारे जुम्मे बगीचेका और कोई काम सौंपा गया है क्या?"

"गुलाबकी डालियाँ गाड़नी हैं।"

नीरजाने जरा कोंचते हुए कहा—"उसका वक्त यही होगा! उन्हें यह बुद्धि दी किसने, सुनूं तो सही?"

सरलाने धीमे स्वरमें कहा—"बाहरसे अचानक ढेर-सारे आर्डर आ गये हैं, इसलिए भाई साहबने प्रण किया है कि वे जैसे भी हो आनेवाली बरसातसे पहले ज्यादा पौधे लगाके छोड़ेंगे, मैंने मना भी किया था।"

"मना किया था! अच्छा, ठीक है, हरिया मालीको भेज दो मेरे पास।"

हरिया माली आया। नीरजाने कहा—"अब बाबू हो गया है, क्यों? गुलाब लगानेमें हाथ कटते हैं! जीजी-बाई तेरी असिस्टेण्ट माली होंगी क्यों? बाबू साहबके लौटनेके पहले जितनी बन सके डालियाँ गाड़के तैयार रखना। आज तुमलोगोंकी कतई छुट्टी नहीं है, समझे। जली हुई घास और बालू मिला कर जमीन तैयार करना, झीलके दाहने किनारे।" और मन ही मन तय किया कि यहीं पड़े-पड़े वह खुद गुलाबके पौधे लगवाकर काम पूरा करेगी। हरिया मालीकी अब खैर नहीं।

हरिया चेहरेपर अचानक हौंसलेकी हँसी लाकर बोल उठा—"भाभी साहब, एक पीतलकी फूलदानी है, खास कटककी बनी, हरसुन्दर माइतीके यहाँकी। इस चीजकी कदर तुम ही समझ सकती हो। इसी कमरेके लायक है यह।"

नीरजाने पूछा—"कीमत क्या है?"

दाँतों तले जीभ दबाकर हरियाने कहा—"ऐसी बात न करो भाभी सा'ब। इसकी कीमत लूंगा मैं! गरीब जरूर हूं, पर

ओछा नहीं। आखिर तुम्हारा ही खा-पीकर तो आदमी बना हूं।"

फूलदानी तिपाईपर रखकर, पुरानी फूलदानीमेंसे फूल निकाल कर उसमें सजाने लगा। अन्तमें जाते वक्त मुड़कर बोला—"पहलेसे जताये रखता हूं भाभी सा'ब, मेरी भानजीका ब्याह है। बाजूबन्दकी बात न भूल जाना। गिलटके गहने देनेसे तुम्हारी ही निन्दा होगी। इतने बड़े घरका माली, उसके घर ब्याह, गाँव-भरके लोग आँख लगाये बैठे हैं।"

नीरजाने कहा—"अच्छा अच्छा, अभीसे फिकर मत कर, अभी तू जा।"

हरिया चला गया। नीरजाने सहसा करवट बदला और एकसाथ भीतरसे घुमड़ उठी; बोली—"रोशनी, रोशनी, मैं ओछी हो गई हूं, हरिया मालीकी तरह हो गया है मेरा मन।"

आया बोली—"क्या कहती हो तुम बेटी, छिः।"

नीरजा अपने ही आप कहने लगी—"मेरी फूटी तकदीरने मुझे बाहरसे तो नीचे उतार ही दिया है, फिर भीतरसे क्यों उतार दिया? मैं क्या नहीं जानती कि हरिया मुझे आज किस निगाहसे देख रहा है। मेरे मनकी-सी बातें बनाकर वह हँसता हुआ इनाम लेकर चला गया। बुला दे उसे। खूब अच्छी तरह उसे डाट दूंगी, उसकी शैतानी दुरुस्त कर देनी है।"

आया हरियाको बुलानेके लिए उठके जाने लगी तो नीरजा बोली—"रहने दे, आज जाने दे।"

३

कुछ देर बाद चचेरे देवर रमेनने आकर कहा—"भाभी, भाई सा'बने भेजा है। आज आफिसमें बहुत काम है, होटलमें खायेंगे, लौटनेमें देर होगी उन्हें।"

नीरजाने हँसते हुए कहा—"खबर देनेके बहाने एक दौड़में सरपट भागे आये हो लालाजी! क्यों, आफिसका नौकर क्या मर गया था क्या?"

"तुम्हारे पास आनेमें तुम्हारे सिवा और किसी बहानेकी जरूरत ही क्या है भाभी? नौकर क्या समझेगा इस दूत-पदका दर्द?"

"अजी क्यों झूठे ही यहाँ मीठा बखेर रहे हो। रास्ता भूल कर यहाँ आ पड़े हो। तुम्हारी मालिनी आज अकेली ही है कुञ्जवनमें, जाओ सम्हालो वहाँ जाकर।"

"कुञ्जवनकी वनलक्ष्मीको दर्शनी तो चढ़ा जाऊँ पहले, उसके बाद जाऊँगा मालिनीकी खोजमें।"—कहते हुए उसने जेबमेंसे एक कहानीकी किताब निकालकर नीरजाके हाथमें दे दी।

नीरजाने खुश होकर कहा—"आँसुओंकी जंजीर, इसीकी जरूरत थी मुझे। अच्छा अब आशीर्वाद भी सुन लो, फुलवाड़ी की मालिन हमेशा तुम्हारी छातीके पास बँधी रहे हँसी-खुशीकी जञ्जीरमें। वही जिसे तुम कहा करते हो तुम्हारी कल्पनाकी साथिन, तुम्हारी स्वप्न-सङ्गिनी। सुहाग तो देखो!"

रमेन अचानक बोल उठा—"अच्छा भाभी, एक बात पूछूंगा, ठीक-ठीक जवाब दोगी?"

"क्या बात ?"

"सरलासे आज क्या तुम्हारी लड़ाई हो गई है ?"

"क्यों, क्या बात हुई ?"

"देखा कि झीलके किनारे घाटपर चुपचाप बैठी है वह। औरतोंका मन तो मरदों जैसा काम-छोड़ उड़नछू मन नहीं होता। ऐसी बेकार दशा सरलाकी मैंने कभी नहीं देखी। मैंने पूछा कि 'मन किधर छोड़ आई ?' उसने कहा, 'जिधर गरम हवा सूखे पत्ते उड़ा ले जाती है, उधर।' मैंने कहा, 'पहेली क्यों बतलाती हो, साफ-साफ कहो न।' उसने कहा, 'सब बातोंके लिए भाषा कहाँ ?' फिर पहेली! मैं गुनगुनाने लगा, न जाने किस हृदय-हीनके वाक्य-बाणने दुखिया नारीको व्यथित किया !"

"तुम्हारे भाई साहबके सिवा और कौन हो सकता है ?"

"हरगिज नहीं। भाई साहब पुरुष ठहरे। वे तुम्हारे उन मालियोंपर गरज सकते हैं। लेकिन 'पुष्पराशाविवाग्निः', यह कैसे सम्भव हो सकता है ?"

"अच्छा, अब फालतू बातें रहने दो। एक कामकी बात कहती हूं, मेरी बात माननी ही पड़ेगी तुम्हें। तुम्हें मेरे कण्ठकी सौगंद है, तुम सरलासे ब्याह कर लो। कुमारी लड़कीका उद्धार करना बड़ा पुण्यका काम है।"

"पुण्यका लोभ मुझे कतई नहीं, पर इतना मैं हलफ उठाकर कह सकता हूँ कि कुमारी लड़कीके लालचकी होड़में मैं और किसीसे पीछे न रहूंगा।"

"तो फिर रुकावट कहाँ है ? उसका मन नहीं है ?"

"यह तो मैंने कभी नहीं पूछा। मैं तो कह ही चुका हूँ, वह मेरी कल्पनाकी साथिन ही रहेगी, दुनियादारीकी साथिन न होगी।"

सहसा तीव्र आग्रहके साथ नीरजाने रमेनका हाथ थाम लिया और जोरसे मसकती हुई बोली—"क्यों नहीं होगी, होना ही पड़ेगा। मरनेके पहले मैं तुम दोनोंका ब्याह देखूंगी ही, नहीं तो भूत होकर तुम्हें परेशान करती रहूंगी, समझे।"

नीरजाकी घबराहट देखकर रमेन आश्चर्यसे दङ्ग रह गया। कुछ देर तक उसके मुँहकी तरफ देखता रहा, और फिर अन्तमें सिर हिलाकर बोला—"भाभी, मैं रिश्तेमें छोटा जरूर हूँ, पर उमरमें बड़ा हूँ। उड़ती हवाके साथ बथुआके बीज भी उड़ आते हैं, और गेहूँके साथ जब वे जड़ जमा लेते हैं तो किसकी मजाल कि उन्हें उखाड़ फेंके।"

"मुझे उपदेश देनेकी जरूरत नहीं। मैं तुमसे बड़ी हूँ, पूज्य हूँ, मैं तुम्हें उपदेश देती हूँ, ब्याह कर लो। देर मत करो। इसी फागुनमें सहालग है, दिन दिखवा लो।"

"मेरी पत्रामें सालके तीन सौ पैंसठ दिन ही सहालगके दिन हैं। लेकिन दिन ठीक होनेसे क्या हुआ, रास्ता जो नहीं है। मैं एक बार तो जेल हो आया, अब भी पैरोंके नीचे पिसलन मौजूद है ज्योंकी त्यों जेलके फाटक तक। उस रास्तेमें ब्याहके देवता तो दूर रहे, उनका चपरासी तक कदम नहीं रखता।"

"आजकलकी लड़कियाँ ही कौन-सी जेलसे डरती हैं?"

"न डरें, पर सप्तपदी गमनका रास्ता वह नहीं है। उस

रास्तेमें वधूको गँठबन्धनमें न बाँधकर मनमें बाँध रखनेसे ही ज्यादा जोर मिलता है। इसलिए मेरे वह तो मनमें ही बँधी रहेगी।"

हॉरलिक्स दूधका कटोरा तिपाईपर रखकर सरला लौटी जा रही थी। नीरजाने कहा—"जाओ मत सरला, सुनो, यह फोटो किसका है, पहचानती हो?"

सरलाने कहा—"यह तो मेरा ही है।"

"यह तुम्हारी उन दिनोंकी तसवीर है जब तुम दोनों ताऊजीके बगीचेमें काम किया करते थे। तब तुम्हारी उमर होगी चौदह-पन्द्रह सालकी। मराठी लड़कियोंकी तरह लाँग देकर साड़ी पहने हुए हो।"

"तुम्हें यह कहाँसे मिली?"

"उनकी टेबिलके ड्रॉवरमें देखी थी, तब कुछ ध्यान नहीं दिया था। आज उसमेंसे निकलवा मंगाई है। लालाजी, तबसे अब सरला कहीं ज्यादा अच्छी लगती है। तुम्हारी क्या राय है?"

रमेनने कहा—"तब क्या कोई सरला कहीं थी? कमसे कम मैं तो उसे नहीं जानता। मेरे लिए तो अबकी सरला ही एकमात्र सत्य है। तुलना मैं किसके साथ करूं?"

नीरजाने कहा—"अबका चेहरा इसका हृदयके किसी एक खास रहस्यसे भर उठा है, मानो जो बादल सफेद थे उनमेंसे आज सावनकी वर्षा बरसना चाहती है। इसीको तो तुम लोग रोमैण्टिक कहते हो, क्यों ठीक है न, लालाजी?"

सरला फिर जानेको तैयार हुई, पर नीरजाने उसे रोक लिया,

बोली—"बैठो सरला। लालाजी, एक बार पुरुषोंकी आँखोंसे सरलाको देख लूं। अच्छा तुम्हीं बताओ, लालाजी, सबसे पहले इसके कहाँ नजर पड़ती है?"

रमेनने कहा—"मेरी तो सब जगह एकसी नजर पड़ती है।"

"नहीं, सबसे पहले आँखोंपर नजर पड़ती है, और वहीं उलझ जाती है। एक तरहकी ऐसी गम्भीरता है इसकी आँखोंमें, ऐसा देखना आता है इसे कि देखते ही बनता है। नहीं नहीं, उठो मत, थोड़ी देर और बैठो। देहको देखो, कैसी ठोस गढ़न है, गोल-मटोल हलकी चिकनी।"

"तुम क्या सरलाको नीलाम करने बैठी हो, भाभी? तुम्हें तो मालूम है, यहाँ वैसे ही उत्साहकी कमी नहीं।"

नीरजा दलालीके उत्साहमें कहने लगी—"लालाजी, देखो इसके हाथोंकी तरफ देखो जरा, कैसी सुडौल बाँहें हैं, कितने कोमल हाथ हैं, कितनी सुन्दर उंगलियाँ हैं। काव्यके वर्णनसे मिला लो। ऐसा और-किसीमें देखा है तुमने?"

रमेन हँस दिया, बोला—"और कहीं देखा है या नहीं, इसका जवाब तुम्हारे मुँहपर दूं तो जरा-कुछ भद्दा सुनाई देगा।"

"इन हाथोंपर तुम अपना दावा नहीं करोगे?"

"हमेशाके लिए दावा नहीं करता तो क्या हुआ, मैं तो क्षण-क्षणमें दावा करता रहता हूं। तुम्हारे यहाँ जब चाय पीने आता हूं तो चायसे भी बढ़कर जो चीज मिलती है वह इन्हीं हाथोंकी बदौलत। उस रस-ग्रहणमें पाणि-ग्रहणका जो कुछ थोड़ा-बहुत सम्बन्ध रहता है, इस अभागेके लिए उतना ही काफी है।"

सरला मोंढ़ा छोड़कर उठ खड़ी हुई। पर कमरेके दरवाजे तक पहुंचनेके पहले ही नरेनने उसका रास्ता रोक लिया। बोला— "एक वचन देती जाओ, तब राह छोड़ूँगा।"

"क्या बोलो ?"

"आज शुक्ला चतुर्दशी है। मैं मुसाफिरकी हैसियतसे आऊँगा तुम्हारे बगीचेमें, कहनेकी बात अगर कुछ हुई भी, तो भी कहनेकी जरूरत न होगी। अकाल पडा हुआ है, भर-पेट दर्शन ही नहीं जुटता, बातकी कौन कहे ? अचानक इस कमरेमें मुष्टिभिक्षा मिली है, यह मंजूर नहीं। आज तुम्हारे बगीचेमें जरा किसी पेड़के नीचे अच्छी तरह बैठकर मन भर लेना चाहता हूं।"

सरलाने स्वाभाविक स्वरमें ही कहा—"अच्छी बात है, आ जाना।"

रमेन नीरजाके पलङ्गके पास जाकर बोला—"अच्छा तो हुक्म मिल जाय भाभी !"

"अब रहनेकी जरूरत ही क्या है ? भाभीका जो काम था वह तो पूरा हो ही चुका।"

रमेन चला गया।

४

रमेनके चले जानेपर नीरजा दोनों हाथोंसे मुँह ढककर बिस्तर पर पड़ रही। सोचने लगी, ऐसे मनको उन्मत्त करनेवाले दिन कभी उसके भी थे। वसन्तकी कितनी रातोंको उसने चंचल बना

दिया है। दुनियाकी बारह-आना औरतोंकी तरह वह क्या तब पतिकी घर-गृहस्थीकी चीज-वस्तोंमें शुमार थी ? बिस्तरपर पड़े-पड़े रह-रहकर उसे यही खयाल आने लगा कि कितने ही दिन उसके पतिने उसकी अलकें खींचकर गद्गद कंठसे कहा है, 'मेरे रंग-महलकी साकी'। पिछले दस सालोंमें रंग जरा भी फीका नहीं पड़ा, तब प्याला था लबालब भरा हुआ। उसके पति उससे कहा करते, 'प्राचीनकालमें स्त्रियोंके पाँव छुआते ही अशोकवृक्षमें फूल खिल जाया करते थे, मेरी फुलवाड़ीमें आज कालिदासका काल पकड़ाई दे गया है। जिस रास्तेपर रोज तुम्हारे पाँव पड़ते हैं, उसके दोनों तरफ फूल खिल निकलते हैं रंग-बिरंगे। वसन्तकी हवामें तुम शराबका छिड़काव कर देती हो, गुलाबकी फुलवाड़ी नशेमें झूम उठती है।' बातों-ही-बातोंमें कहने लगते थे, 'तुम न होतीं तो फूलोंके इस स्वर्गमें बनियेकी दूकान वृत्तासुर बनकर दखल जमा लेती। मेरे भाग्यसे तुम हो नन्दनवनकी इन्द्राणी।' हाय-री तकदीर, यौवन तो अभी खतम भी न हो पाया, उसके पहले ही उसकी महिमा जाती रही ! तभी न इन्द्राणी आज अपने आसनको नहीं भर पाती। उस दिन उसके मनमें क्या जरा भी कहीं लेशमात्र डर था ? वह जहाँ थी वहाँ और-कोई भी नहीं थी, अपने आकाशमें वह थी प्रभातके अरुणोदय-सी परिपूर्ण अकेली। आज कहीं भी जरा कोई छाया दिखाई देते ही उसकी छाती काँप उठती है, अपने ऊपर अब भरोसा नहीं है। नहीं तो कौन है यह सरला, किस बातका घमंड है उसे ! आज उसके विषयमें भी सन्देह हो रहा है उसके मनमें। कौन जानता था

कि सूरज डूबनेके पहले ही इतनी दीनता आ चुपटेगी उसकी तकदीरसे ! इतने दिनोंसे इतना सुख, इतना गौरव, इतनी उदारतासे उँड़ेलकर अन्तमें विधाताने इस तरह सेंध काटकर अपना सारा दान चुरा लिया !

"रोशनी, जरा सुन जा ।"

"क्या बिटिया ?"

"तेरे जमाई-बाबू किसी दिन मुझे 'रंग-महलकी रंगिनी' कहकर पुकारा करते थे। ब्याह हुए दस साल हुए होंगे, वह रंग तो अभी फीका नहीं पड़ा, पर वह रंग-महल ?"

"जायगा कहाँ, है तुम्हारा रंग-महल। कल तुम रात-भर नहीं सोईं, जरा सो लो, मैं तलवे सहराये देती हूं।"

"रोशनी, आज तू पूनो ही समझ ले। ऐसी कितनी चाँदनी रातोंमें मैं नहीं सोई। दोनों जने बगीचेमें घूमते रहे हैं। एक वह जगना था और एक यह जगना ! आज तो नींद आ जाय तो जी जाऊं, पर मुँहजली नींद आना जो नहीं चाहती।"

"जरा चुप हो जाओ, नींद अपने-आप आयेगी।"

"अच्छा, वे दोनों क्या बगीचेमें घूमते रहते हैं चाँदनी रातमें ?"

"सवेरेके चलानके लिए फूल तोड़ते हुए देखा है दोनोंको। घूमेंगे-फिरेंगे कब, वक्त कहाँ है ?"

"माली आजकल खूब सोते हैं। शायद मालियोंको जान-बूझकर नहीं जगाते होंगे ?"

"तुम नहीं हो, अब उनसे कुछ कहनेकी हिम्मत है किसके ?"

"गाड़ीकी आवाज है न, देख तो ?"

"हाँ, बाबूकी गाड़ी आ गई।"

"जरा छोटा बट्टा उठा दे। बड़ा-सा गुलाब उठा ला फूलदानीमेंसे। सेफ्टिपिनका डब्बा कहाँ है, दे तो देखूँ। आज मेरा चेहरा बहुत ही फीका-सा लगता है। जा तू जा यहाँसे।"

"जाती हूँ। लेकिन दूध-वाली पड़ी ही रहेगी, पी लो न, रानी-बिटिया बन जाओ।"

"पड़ी रहने दे, नहीं पीऊंगी।"

"दो दाग दवा आज पीनेसे रह गई।"

"तू बकबक मत कर, जा यहाँसे, उस खिड़कीको खोलती जा।"

आया चली गई।

टन-टन-टन, तीन बज गये। धूपका रंग आरक्त हो आया है, छाया ढल पड़ी है पूरबकी तरफ, हवा आ रही है दक्षिणसे, झीलका पानी झिलमिला रहा है। माली सब कामसे लग गये हैं। नीरजा दूरसे जहाँ तक देख सकती है देख रही है।

तेजीसे कदम रखता हुआ आदित्य दौड़ा आया। उसके दोनों हाथ भरे हुए थे बसन्ती रंगके देशी लैबर्नम-फूलोंकी मंजरियोंसे। उनसे उसने नीरजाके पाँवोंके पासकी जगह ढक दी। बिस्तरपर बैठते ही उसके हाथ मसककर बोला—"आज कितनी देरसे तुम्हें देखा नहीं नीरू।" सुनकर नीरजासे फिर रहा नहीं गया, सिसक-सिसककर रोने लगी वह। आदित्य पलंगसे उतरकर घुटनोंके बल जमीनपर बैठ गया और नीरजाके गलेसे लिपट

गया ; उसके भीगे हुए गालोंको चूमता हुआ बोला—"मनमें तुम निश्चित जानती हो कि मेरा कोई दोष नहीं था।"

"इतना निश्चित मैं कैसे जान सकती हूं बताओ ? मेरे क्या अब वे दिन रहे हैं ?"

"दिनोंका हिसाब लगाके क्या होगा ? तुम तो मेरी वही तुम हो।"

"आज मुझे सब बातमें डर लगता है। मनमें बल जो नहीं पाती।"

"थोड़ा-थोड़ा डरनेसे अच्छा लगता है। है न ? उलाहना देकर मुझे जरा उकसा देना चाहती हो। स्त्रियोंकी यह चतुराई तो स्वाभाविक है।"

"और भूलना शायद पुरुषोंका स्वभाव नहीं ?"

"भूलनेकी फुरसत ही कहाँ देती हो।"

"अब ज्यादा न बोलो, विधाताके श्रापसे लम्बी फुरसत दे दी है।"

"उलटी बात न कहो। सुखके दिनोंमें भूला जा सकता है, व्यथाके दिनोंमें नहीं।"

"सच बताओ, आज सवेरे तुम भूलके नहीं चले गये थे ?"

"कैसी बात करती हो तुम ! मजबूरीसे जाना पड़ा था, पर जब तक रहा तबीयत बेचैन ही रही।"

"कैसे बैठो हो तुम ? पैर उठाके ऊपर बैठ जाओ अच्छी तरह।"

"बेड़ियाँ डालना चाहती हो पैरोंमें, कहीं भाग न जाऊं ?"

"हाँ, बेड़ियाँ डालना चाहती हूं। ताकि जन्म-मरणमें तुम्हारे पाँव निस्सन्देह रूपसे मेरे पास बँधे रहें।"

"बीच-बीचमें जरा-जरा सन्देह किया करो, उससे प्यारका स्वाद बढ़ता है।"

"नहीं, सन्देह जरा भी नहीं। रत्ती-भर भी नहीं। तुम जैसे पति कितनी स्त्रियोंको मिलते हैं? तुमपर भी सन्देह करूं, वह तो मेरे लिए ही धिक्कार होगा।"

"तो फिर मैं ही तुमपर सन्देह किया करूंगा, नहीं तो जमेगा नहीं नाटक।"

"सो किया करना, उसका कोई डर नहीं। वह होगा प्रहसन।"

"कुछ भी कहो, आज लेकिन तुम्हें शक हुआ था मुझपर।"

"फिर क्यों छेड़ते हो उस बातको। तुम्हें सजा नहीं देनी होगी, उसकी सजा अपने-आप ही पा चुकी हूं।"

"सजा किस लिए? गुस्सेकी गरमी अगर बीच-बीचमें न दिखाई दी तो समझूँगा प्यारकी नाड़ी ही छूट गई है।"

"अगर किसी दिन गलतीसे तुमपर नाराज हुई, तो निश्चय समझ लेना उसमें मेरा हाथ नहीं, कोई अपदेवता ही मेरे सिर आ गया है।"

"अपदेवता एक-न-एक हम सबके हैं, बीच-बीचमें सिर आकर अपना अस्तित्व जता जाता है। सुबुद्धि आती है तो राम नाम जपते हैं, बेचारा भाग खड़ा होता है।"

इतनेमें आया आ गई भीतर। बोली—"जमाई-बाबू, आज सबेरेसे बिटियाने दूध नहीं पीया, दवाई भी नहीं ली, मालिश

भी नहीं कराई। ऐसा करनेसे कैसे पार पड़ेगी ?"—कहकर हाथ हिलाती हुई तेजी चली गई। सुनकर आदित्य उठ खड़ा हुआ, बोला—"अब मैं नाराज होता हूं।"

"हाँ, होओ, खूब नाराज होओ, जितने हो सको होओ, मुझसे कसूर हुआ है; पर पीछेसे माफ कर देना।"

आदित्य दरवाजेके पास जाकर पुकारने लगा—"सरला, सरला!"

सुनते ही नीरजाकी नसें तन्ना उठीं। समझ गई कि चुभे हुए काँटेपर हाथ पड़ा है। सरला आ पहुंची। आदित्यने नाराज होकर पूछा—"नीरूको दवा नहीं दी आज, दिन-भर कुछ खानेको भी नहीं दिया ?"

नीरजा बोल उठी—"उसे क्यों डाटते हो ? उसका क्या दोष है। मैंने ही शरारत करके नहीं खाया-पीया, जो कुछ कहना सुनना है मुझसे कहो। सरला तुम जाओ, झूठमूठको क्यों खड़ी-खड़ी डाट सुनोगी ?"

"जायगी क्यों, दवा निकालके देगी। हॉरलिक्स दूध बनाके लायेगी।"

"ओहोः, दिन-भर बेचारीको मालियोंके साथ काम कराके परेशान किया, उसपर अब नर्सका काम लोगे। तुम हो कैसे, जरा भी दया नहीं आती तुम्हारे मनमें! आयाको बुला लो न।"

"आया क्या जाने इन सब कामोंको।"

"बड़ा-भारी काम है न! सब काम कर लेगी वह; बल्कि और भी अच्छी तरह कर लेगी।"

"लेकिन…"

"लेकिन फिर किस बातकी ? आया, आया !"

"इतनी उतावली क्यों होती हो ? उत्तेजना आनेसे फिर कोई नया उपद्रव उठ खड़ा होगा।"

"मैं आयाको भेजे देती हूं।"—कहकर सरला चली गई। नीरजाकी बातका कोई जवाब दे इतना भी उसकी जबानपर न आया। आदित्यको भी मन-ही-मन ताज्जुब हुआ; सोचा, सरलासे क्या सचमुच ही बेजा मेहनतका काम लिया जा रहा है ?

दवा और पथ्य देनेके बाद आदित्यने आयासे कहा—"सरला बहनजीको बुला ला।"

"बात-बातमें सरला-बहनजी, बेचारीको तुम परेशान कर डालते हो।"

"कामकी बात करनी है।"

"रहने दो न अभी कामकी बात।"

"ज्यादा देर नहीं लगेगी।"

"सरला लड़की है, उसके साथ इतनी कामकी बात क्या करते हो; उससे तो बल्कि हरियाको बुलाओ तो अच्छा।"

"तुमसे ब्याह करनेके बादसे एक बातका आविष्कार किया है मैंने, औरतें ही कामकी हैं, मर्द तो जड़से बेकार हैं। हम लोग काम करते हैं मजबूरीसे और तुम लोग काम करती हो मनके उत्साहसे। इस विषयमें एक 'थीसिस' लिखनेका इरादा है। मेरी डायरीमें बहुतसे उदाहरण मिलेंगे इसके।"

"उस औरतको ही जिस विधाताने आज उसके मनके कामसे

वंचित कर रखा है उसकी किन शब्दोंमें निन्दा करूं। ऐसा भूकम्प आया कि मेरा कामका बना-बनाया घर ढह गया? इसीसे न खंडहरमें आज भूतोंकी बस्ती हो गई।"

सरला आ गई।

आदित्यने पूछा—"ऑरकिड-घरका काम हो गया?"

"हाँ हो गया।"

"सब?"

"सब।"

"और गुलाबका कटिंग?"

"माली जमीन तैयार कर रहे हैं।"

"जमीन! जमीन तो मैंने पहले ही से तैयार कर रखी थी। हरिया मालीके जुम्मे सौंप दिया है तो? बस ठीक है, दँतौनकी खेती शुरू कर दी होगी उसने।"

बातको बीच ही में काट देनेकी गरजसे नीरजा बोल उठी—"सरला, जाओ तो तुम, नारंगीका रस बनाकर ले आओ जरा, उसमें थोड़ा-सा अदरकका रस निचोड़ देना और जरा-सा शहद डाल देना।"

सरला सिर झुकाये हुए घरसे निकल गई।

नीरजाने पूछा—"आज तुम तड़के ही उठ बैठे थे, जैसे हम रोज उठा करते थे?"

"हाँ।"

"घड़ीमें अलारमकी चाभी भरी हुई थी?"

"हाँ, थी तो सही।"

"उस नीमके नीचे कटे हुए तनेके ऊपर चायका सामान सब तैयार कर रखा था वासुने ?"

"सब तैयार था। नहीं तो खिसारतका मामला दायर नहीं करता तुम्हारी अदालतमें ?"

"दोनों कुरसियाँ डाल दी थीं ?"

"बाकायदा। और नीली धारीदार बसन्ती रंगके तुम्हारे चायके प्याले, दूधका जैग चाँदीका, छोटी पथरीमें चीनी, और ड्रैगॉनवाला जापानी ट्रे, सब कुछ था।"

"दूसरी कुरसी सूनी क्यों रखी ?"

"जान-बूझकर नहीं रखी। आसमानमें तारे गिने हुए ठीक ही थे, सिर्फ शुक्ल-पंचमीका चाँद रह गया दिगन्तके बाहर। मौका देखता तो उसे भी पकड़ लाता।"

"सरलाको क्यों नहीं बुला लिया अपनी टेबिलपर ?"

इसके जवाबमें कह देता तो अच्छा ही होता कि 'तुम्हारे आसनपर और-किसीको बिठानेकी तबीयत नहीं होती।' पर सत्यवादीने ऐसा न कहके कह दिया—"सवेरेके वक्त शायद वह जप-तप कुछ किया करती है, मुझ जैसी भजन-पूजनहीन म्लेच्छ तो नहीं है न वह !"

"चाय पीनेके बाद शायद उसे ऑरकिड्-घरमें ले गये होगे ?"

"हाँ, कुछ काम था, उसे समझाकर भागना पड़ा सीधा दुकान।"

"अच्छा, एक बात पूछती हूं मैं, सरलाके साथ रमेनका व्याह क्यों नहीं कर देते ?"

"घटकई करना मेरा रोजगार थोड़े ही है।"

"नहीं, मजाककी बात नहीं। ब्याह तो करना ही होगा, रमेन जैसा लड़का और कहाँ मिलेगा ?"

"एक तरफ वर है और दूसरी तरफ कन्या, बीचमें मन है या नहीं इसकी खबर लेनेकी फुरसत ही नहीं मिलती। दूरसे मालूम होता है वहीं कुछ खटका है।"

नीरजा जरा-कुछ झुँझलाहटके साथ बोली—"कोई भी खटका नहीं होता अगर तुम्हें सचमुचकी फिकर होती।"

"ब्याह करेगा कोई और सचमुचकी फिक्र होगी मुझ अकेलेको, इससे क्या काम चलता है ? तुम कोशिश कर देखो न !"

"कुछ दिनके लिए पेड़-पौधोंसे बेचारीको छुट्टी दे दो, दृष्टिको फुरसत मिलते ही वह ठीक जगह जाकर जम जायगी।"

"शुभदृष्टिके उजालेमें पेड़-पौधे पहाड़-पर्वत सब-कुछ स्वच्छ हो जाते हैं। उसे एक तरहका एक्सरेज़ ही समझो तुम।"

"झूठ बकते हो तुम। असल बात यह है कि तुम्हारी इच्छा ही नहीं कि ब्याह हो।"

"अब तुमने ठीक नस पकड़ी है। सरला चली जायगी तो मेरे बगीचेका क्या हाल होगा बताओ भला ? नफा-नुकसानकी बात भी तो सोची जाती है। अरे अरे, क्या हुआ, दर्द अचानक बढ़ उठा क्या ?"

उद्विग्न हो उठा आदित्य। नीरजाने रूखे कंठसे कहा—"कुछ नहीं हुआ। मेरे लिए तुम्हें इतने घबरानेकी जरूरत नहीं।"

आदित्य जब कि उठके जाना चाहता था तब वह कह उठी—"हमारे ब्याहके बाद ही ऑरकिड-घरकी नींव पड़ी थी, भूल तो

नहीं गये उस बातको ? उसके बाद प्रतिदिन हम दोनोंने मिलकर उस घरको सजाया है। उसे तहस-नहस करनेमें तुम्हारा मन जरा भी व्यथित नहीं होता ?"

आदित्य दंग रह गया ; बोला—"क्या कह रही हो तुम ! तहस-नहस करनेका शौक मुझमें कहाँ कब देखा तुमने ?"

उत्तेजित होकर नीरजाने कहा—"सरला क्या जानती है उस फुलवाड़ीका ?"

"क्या कहती हो ! सरला नहीं जानती ? जिन मौसाजीके घर मैं बड़ा हुआ हूं, वे उसके ताऊ थे। तुम्हें तो मालूम है, बगीचेके सम्बन्धमें ओलम-बारहखड़ी तो मैं उन्हींसे सीखा हूं। मौसाजी कहा करते थे, फुलवाड़ीका काम औरतोंका ही है ; और गाय दुहना भी। उनके हर काममें सरला उनकी साथिन थी।"

"और तुम थे साथी।"

"सो तो था ही। पर मुझे करना पड़ती थी कालेजकी पढ़ाई, उसकी तरह इतना वक्त कहाँ मिलता था मुझे। सरलाको मौसाजी खुद पढ़ाते थे।"

"उस बगीचेकी बदौलत ही तुम्हारे मौसाजीका सत्यानास हो गया। उस लड़कीका पाँव ही ऐसा है। जहाँ-जहाँ पड़ेगा बंटाढार कर देगा। इसीका मुझे डर है। देखो न, मैदान-सा माथा है, घोड़ी-सी उछलकर चलती है। औरतोंके मरदोंकी-सी बुद्धि होना अच्छा नहीं। उससे अशुभ ही होता है।"

"तुम्हें आज हो क्या गया है बताओ तो ? कैसी बातें कर रही हो आज तुम ? मौसाजी बगीचा बनाना ही जानते थे,

रोजगार करना नहीं। फूलोंकी खेती करनेमें वे अपना सानी नहीं रखते थे, उसमें वे अद्वितीय थे ; और नुकसान उठानेमें भी उनका कोई मुकाबला नहीं कर सकता था। नाम उन्होंने खूब कमाया था, पर दाम बिलकुल नहीं। बगीचा करनेके लिए जब उन्होंने पूंजी दी थी, मैं क्या जानता था कि तब उनकी लुटिया ही डुबाऊ थी ? मेरे लिए सिर्फ एक ही तसल्लीकी बात है कि उनके मरनेके पहले ही मैंने उनका कर्जा अदा कर दिया।"

सरला नारंगीका रस ले आई। नीरजाने कहा—"रख दो वहाँ।"

तिपाईपर रस रखके चली गई सरला। रसका प्याला ज्योंका त्यों पड़ा रहा, उसने छुआ भी नहीं।

"सरलासे तुमने ब्याह क्यों नहीं कर लिया ?"

"क्या कहती हो, कुछ समझमें नहीं आता। ब्याहकी बात कभी मेरे मनमें ही नहीं आई।"

"मनमें ही नहीं आई ! यही होगा तुम्हारा कवित्व ?"

"जीवनमें कवित्वका भूत पहले-पहल उसी दिन सवार हुआ था जिस दिन तुम्हें देखा था। उसके पहले हम दोनों जंगलियोंने मिलकर दिन काटे हैं जंगलकी छायामें। अपनेको थे भूले हुए। नये जमानेकी सभ्यतामें अगर पलता-पनपता तो क्या होता, कुछ कह नहीं सकता।"

"क्यों इसमें सभ्यताका क्या कसूर हो गया ?"

"आजकी सभ्यता दुःशासनकी तरह मनका चीर-हरण करना चाहती है। अनुभव करनेके पहले ही वह सयाना कर देती है

आँखोंमें उंगली डालकर। सुगन्धका इशारा उसके लिए ज्यादा सूक्ष्म है, पगड़ी तोड़कर मालूम करती है वह सब बात।"

"सरला तो देखनेमें बुरी नहीं है।"

"सरलाको मैं सरला ही समझता था। वह देखनेमें अच्छी है या बुरी, इस तत्त्वका विश्लेषण मैंने कभी नहीं किया।"

"अच्छा, सच्ची बताओ, उसे तुम नहीं चाहते थे ?"

"जरूर चाहता था। मैं क्या जड़ पदार्थ हूं जो उसे नहीं चाहूंगा। मौसाजीका लड़का रंगूनमें बैरिष्टरी करता है, उसके लिए कोई फिकर नहीं। उनके बगीचेको सरला सम्हालती रहे, बस इतनी ही उनकी चाहना थी। यहाँ तक उनका विश्वास था कि यह बगीचा ही उसके हृदय-मनको घेरे रहेगा। उसके ब्याह करनेकी गरज ही न रहेगी। उसके बाद वे तो चले गये, सरला रह गई अनाथा, महाजनोंके हाथ कर्जमें बगीचा गया बिक। उस दिन मेरी छाती बैठ गई थी, देखा नहीं था क्या तुमने ? प्यार करनेकी चीज ही है वो, उसे प्यार नहीं करूँगा ? तुम्हें तो याद होगा, किसी दिन सरलाका चेहरा हँसी-खुशीसे भरा रहता था। मालूम होता था चिड़ियोंकी उड़ान थी उसके चलने-फिरनेमें। आज वह चल रही है छातीपर भारी बोझ लिये हुए; फिर भी टूट-फूटकर बरबाद नहीं हो रही ! एक दिनके लिए भी कभी उसने गहरी साँस नहीं ली मेरे आगे, अपनेको वह इतनी छुट्टी भी नहीं देती।"

आदित्यकी बातको दबाते हुए नीरजाने कहा—"बस अब रहने दो, बहुत सुन चुकी हूं उसकी बातें। ज्यादा कहनेकी

जरूरत नहीं। असाधारण लड़की है वह। इसीलिए मेरा तुमसे कहना है कि उसे बारासतके कन्या-महाविद्यालयकी हेड-मिस्ट्रेस बना दो। विद्यालयवाले कितनी ही मरतबा कह चुके हैं।"

"बारासतका विद्यालय? क्यों अण्डमान भी तो है।"

"नहीं मजाककी बात नहीं। सरलाको तुम अपने बगीचेका और चाहे जो भी काम सौंपना चाहो सौंप सकते हो, पर उस ऑरकिड-घरका काम तुम उसे हरगिज नहीं सौंप सकते।"

"क्यों क्या हो गया?"

"मैं तुमसे कहे देती हूं, सरला ऑरकिडके बारेमें कुछ नहीं जानती।"

"मैं भी तुमसे कहता हूं, मुझसे सरला कहीं अच्छा समझती है। मौसाजीको खास शौक था ऑरकिडका। वे अपने खास आदमीको भेजकर सेलिबिससे, जावासे, यहाँ तक कि चीनसे ऑरकिड मँगाया करते थे; उनके दर्दको समझें ऐसे लोग तब थे ही नहीं।"

इस बातको नीरजा जानती है; और इसीलिए वह उसके लिए असह्य है।

"अच्छा अच्छा, ठीक है, वह मुझसे भी ज्यादा समझती है और तुमसे भी। समझने दो, फिर भी मैं तुमसे कहती हूं ऑरकिडका घर सिर्फ तुम्हारा हमारा है, वहाँ सरलाका कोई हक नहीं। तुम अपना साराका सारा बगीचा उसे ही दे दो न, तबीयत चाहती है तो, भले ही तुम जरा-सा छोड़ देना मेरे लिए, पर वह सिर्फ मेरा ही होगा। इतने दिनों बाद कमसे कम इतना दावा

तो मैं कर ही सकती हूं। वक्तका फेर है जो आज बिस्तरपर पड़ी हुई हूं। इसके मानी—" बात उससे पूरी कही भी नहीं गई, तकियेमें मुह छिपाकर अशान्त होकर रोने लगी।

आदित्य दङ्ग रह गया। इतने दिनोंसे मानो वह स्वप्नमें चल रहा था, ठोकर खाकर चौंक उठा। यह क्या बात है? समझ गया कि यह रोना आजका नहीं, बहुत दिनोंका है। वेदनाका तूफान नीरजाके भीतर-ही-भीतर दिनपर दिन जोर पकड़ता जा रहा था, और आदित्यको कभी एक क्षणके लिए भी उसका आभास तक नहीं मिला। ऐसा बेवकूफ है वह कि सोच रहा था, सरला बगीचेकी हिफाजत करती है इससे नीरजा खुश है! खासकर मौसमके हिसाबसे खास-खास फूलोंकी कियारी सजानेमें वह अपनी सानी नहीं रखती। आज सहसा उसे याद उठ आई एक दिन किसी मौकेपर जब उसने सरलाकी तारीफ करते हुए कहा था, 'कामिनीकी लता इतनी खूबसूरतीके साथ मैं तो नहीं लगा सकता था', तो नीरजा ठहाका मारकर हँस पड़ी थी, और बोली थी, "अजी बाबू साहब, मुनासिब हकसे किसीको ज्यादा दे दिया जाय तो आखिरमें उससे उसका नुकसान ही होता है।' आदित्य को आज याद उठ आई, पेड़-पौधोंके बारेमें सरलाकी कोई जरासी भी गलती पकड़ पाती तो वह उसे बार-बार बजा-बजाकर शोर मचाये बगैर नहीं मानती थी। साफ याद है उसे, अंग्रेजी किताबोंमेंसे ढूँढ़-ढूँढ़कर नीरजा कम जाने-हुए फूलोंके उद्भट नाम याद कर लेती और भले-मानसकी तरह उनके बारेमें सरलासे पूछा करती; जब वह गलती करती तो नीरजाकी हँसी पहाड़ी झरना

बन जाती—'बड़ी भारी पण्डितानी ठहरीं! कौन नहीं जानता कि उसका नाम कैसिया-जावनिका है। हरिया माली भी बता देगा।'

आदित्य बहुत देर तक बैठा सोचता रहा। उसके बाद नीरजाके हाथ अपनी मुट्ठीमें लेकर बोला—"रोओ मत, नीरो, बोलो, क्या कहना चाहती हो, तुम जैसा कहोगी वैसा ही करूँगा मैं। तुम क्या चाहती हो कि सरलाको फुलवाड़ीके कामसे अलग रखा जाय?"

नीरजा अपने हाथ छीनकर कहने लगी—"मैं कुछ नहीं चाहती, कुछ भी नहीं। बगीचा तुम्हारा है। तुम जिसे खुशी रख सकते हो, मुझे उससे क्या?"

"नीरो, यह बात तुमसे कही गई, बगीचा सिर्फ मेरा ही है? तुम्हारा नहीं? हम दोनोंमें कब बटवारा हुआ, कबसे मेरे हिस्सेमें आया वह?"

"जबसे तुम्हारा रह गया विश्व-जगतका और-सब-कुछ, और मेरा रह गया सिर्फ घरका यह कोना। अपने टूटे हुए मनको लेकर मैं तुम्हारी उस आश्चर्यमयी सरलाके आगे खड़ी होऊँ तो किस बूतेपर? मेरे अन्दर आज वह शक्ति है कहाँ जो तुम्हारी सेवा कर सकूँ?"

"नीरू, इसके पहले तुमने खुद ही कई बार सरलाको बुलाया है, उससे सलाह-मशविरा किया है बगीचेके बारेमें। याद नहीं तुम्हें कई साल पहले तुम दोनोंने बिजौराके साथ नारङ्गीकी कलम लगाकर मुझे ताज्जुबमें डाल दिया था?"

"तब तो उसे इतना मिजाज नहीं था। विधाताने आज जो मेरी ही तरफ अँधेरा कर दिया है। इसीसे तो आज तुम्हें अचानक इतना सुझाई दे रहा है कि वो इतना जानती है, उतना जानती है, ऐसी है और वैसी है, ऑरकिड पहचाननेमें मैं उसके सामने कोई चीज ही नहीं! उन दिनों तो ये सब बातें कभी किसीके मुँहसे नहीं सुनी। फिर आज़ मेरे इन दुर्भाग्यके दिनोंमें क्यों दोनोंकी तुलना करने आये हो? आज मैं उसके साथ होड़में नहीं जीतूँगी। तौलमें बराबर क्या लेकर होऊँगी, तुम्हीं बताओ?"

"नीरू, आज तुम्हारे मुँहसे जो कुछ सुन रहा हूं, इसके लिए मैं जरा भी तैयार नहीं था। मुझे ऐसा लगता है जैसे आज कोई और ही बोल रही है, ये बातें मेरी नीरोकी हरगिज नहीं।"

"नहीं नहीं, मैं तुम्हारी वही नीरो हूं, वही नीरो। उसकी बातें तुम इतने दिनोंमें भी नहीं समझ पाये, यही मेरे लिए सबसे बढ़कर सजा है। ब्याहके बाद जिस दिन मैंने जाना था कि तुम्हारा बगीचा तुम्हारे लिए प्राणोंसे भी प्यारा है उस दिनसे मैंने इस बगीचेमें और अपनेमें कोई भेद नहीं रखा। नहीं तो तुम्हारे बगीचेके साथ मेरा बड़ा-भारी झगड़ा शुरू हो जाता, और मेरे लिए वह असह्य हो जाता। मैं उसे अपनी सौत ही समझती। तुम तो जानते हो, मेरी रात-दिनकी साधना क्या है। जानते हो किस तरह मैंने उसे अपनेमें मिला लिया है। बगीचेके साथ मैं घुल-मिलकर बिलकुल एक हो गई हूं।"

"जानता क्यों नहीं। मेरे सब-कुछको लेकर ही तो तुम हो।"

"इन सब बातोंको रहने दो। आज देखा कि उस बगीचेमें आसानीसे घुस गई है और-एक जनी! कहीं भी जरा तुम्हें दर्द नहीं मालूम हुआ? मेरी देहको चीरकर उसमें और-किसीके प्राण भरनेकी बात क्या तुम कभी सोच सकते थे? मेरी यह फुलवाड़ी क्या मेरी देह नहीं है, मैं होती तो क्या ऐसा कर सकती थी?"

"क्या करतीं तुम?"

"बताऊं क्या करती? बगीचा शायद तहस-नहस हो जाता। रोजगारका दिवाला निकल जाता। एककी जगह दस माली रखती, पर और-किसी औरतको उसमें घुसने ही न देती; खास कर ऐसी किसीको तो हरगिज नहीं जिसके मनमें यह गरूर हो कि वह बगीचेका काम मुझसे भी अच्छा जानती है। उसके इस अहंकारके जरिये तुम मेरा अपमान करते रहोगे दिन-रात, जब कि मैं मरने बैठी हूं, जब कि कोई चारा नहीं मेरे हाथमें अपनी शक्ति प्रमाणित करनेका? ऐसा कैसे हो सका, बताऊं?"

"बताओ।"

"तुम मुझसे ज्यादा प्यार करते हो उसे, इसलिए। अब तक यह बात मुझसे तुमने छिपा रखी थी।"

आदित्य कुछ देर तक अपने बालोंमें हाथ डालकर बैठा रहा। उसके बाद विह्वलकण्ठसे बोल उठा—"नीरू, दस सालसे तुमने मुझे जाना है, सुखमें दुखमें, नाना अवस्थाओंमें, हर बातमें हर काममें; उसके बाद भी तुम अगर आज ऐसी बात कह सकती हो तो मैं उसका कुछ जवाब नहीं दूंगा। चल दिया। पास रहनेसे तुम्हारी तबीयत और भी ज्यादा खराब हो जायगी।

फर्नरीके पास जो जापानी-घर है वहीं रहूंगा। जब मेरी जरूर समझो, बुला लेना।"

५

झीलके उस पार जामुनके पेड़की ओटमें आकाशमें चाँद उठ रहा है, पानीपर पड़ रही है घनी काली छाया। उस किनारे बासन्ती-वृक्षके कोमल पत्ते नींदसे उठे हुए बच्चेकी आँखोंकी तरह लाल दिखाई दे रहे हैं, उसके फूलोंका रंग है कच्चे सोने जैसा, गहरी सुगन्ध उनकी भारी होकर ऐसी जम गई है जैसे कुहरा छा गया हो। जुगनुओंका झुण्ड झलमला रहा है जारुलकी डालियोंपर। पक्के घाटकी वेदीपर चुपचाप बैठी हुई है सरला। कहीं भी जरा हवा नहीं, पत्तोंमें कम्पन नहीं, पानी ऐसा लग रहा है जैसे काली छायाकी फ्रेममें बँधा हुआ पालिशदार चाँदीका आईना हो।

पीछेसे एक प्रश्न आया—"आ सकता हूं ?"

सरलाने स्निग्ध-कण्ठसे जवाब दिया—"आओ।"

रमेन घाटकी सीढ़ियोंपर आकर बैठ गया उसके पैरोंके पास। सरला चंचल होकर बोल उठी—"कहाँ बैठ गये तुम, यहाँ ऊपर बैठो।"

रमेनने कहा—"जानती हो, देवीका वर्णन पदपल्लवोंसे शुरू होता है। बगलमें जगह मिली तो पीछे बैठूँगा। दो अपना हाथ बढ़ा दो, अभ्यर्थना शुरू कर दूं विलायती कायदेसे।"

सरलाका हाथ लेकर उसने चूम लिया। बोला—"सम्राज्ञीका अभिवादन करता हूं, स्वीकार करो।"

उसके बाद उठ खड़ा हुआ और जेबमेंसे थोड़ा-सा अबीर निकालकर सरलाके माथेपर लगा दिया।

"यह क्या ?"

"जानती नहीं आज फागुनकी पूनो है! होलीका दिन! तुम लोगोंके पेड़-पेड़पर डाली-डालीपर रंगकी बहार है आज। वसन्तमें आदमीकी देहपर तो रंग नहीं खिलता, खिलता है उसके मनमें। उस रंगको बाहर जाहिर करना चाहिए, नहीं तो, मेरी वनलक्ष्मी, अशोकवनमें तुम निर्वासित ही रह जाओगी।"

"तुम्हारे साथ बातोंका खेल खेल सकूँ इतनी उस्तादी नहीं है मुझमें।"

"बातोंकी जरूरत क्या है। पुरुष-पक्षी ही गीत गाता है, स्त्री-पक्षी चुपचाप उसे सुन ले तो वही उसका जवाब हो गया समझो। अब बैठने दो बगलमें।"

पास जाकर बैठ गया। बहुत देर तक चुप रहे दोनों जने। सहसा सरला पूछ उठी—"रमेन भइया, जेल कैसे जाया जा सकता है, सलाह तो दो मुझे।"

"जेल जानेके रास्ते इतने असंख्य हैं और आजकल इतने आसान हैं कि किस तरह जेल नहीं जाया जा सकता यही सलाह देना मुश्किल हो उठा है। इस युगमें गोरोंकी मुरली घरमें टिकने ही कहाँ देती है।"

"नहीं मैं मजाक नहीं कर रही, बहुत सोच-विचारकर देख चुकी मैं, मेरी मुक्ति वहीं है।"

"एक बात मेरी भी सुन लो, साफ-साफ खोलकर कहो अपने मनकी बात।"

"कहती हूं सब बात। सब-कुछ समझ लेते अगर आदित भाई सा'बका चेहरा देख लेते।"

"आभास तो कुछ-कुछ पा रहा हूं।"

"आज शामको मैं अकेली बैठी थी बरंडेमें। अमेरिकासे फूलोंका सचित्र कैटलॉग आया है, उसके पन्ने उलटकर देख रही थी। रोज शामको साढ़े-चार बजेके लगभग चाय पीकर आदित भाई सा'ब मुझे बुला लिया करते थे बगीचेके कामके लिए। आज देखा कि अनमने-से घूम रहे हैं इधरसे उधर; माली काम कर रहे हैं, उनकी तरफ मुड़कर देखते भी नहीं। एक बार ऐसा लगा कि शायद बरंडेकी तरफ आ रहे हैं मेरे पास, पर दुबिधामें लौट गये। ऐसे मजबूत लम्बे आदमी, तेजीसे चलना, फुरतीसे काम करना, सब तरफ सजग दृष्टि, सख्त मालिक लेकिन चेहरे पर मुसकुराहट; आज उस आदमीमें वह चाल नहीं, बाहर क्या हो रहा जरा भी खयाल नहीं, कहाँ डूबे हुए हैं कुछ पता नहीं। बहुत देर बाद धीरे-धीरे आये मेरे पास। और कोई दिन होता तो उसी वक्त हाथकी घड़ी देखकर कहते, 'वक्त हो गया'; और मैं भी उठकर चल देती। आज वह बात नहीं कही, आहिस्तेसे कुरसी खींचकर बैठ गये। बोले, 'कैटलॉग देख रही हो?' मेरे हाथसे कैटलॉग लेकर पन्ने उलटने लगे। कुछ देखा हो ऐसा

तो नहीं जान पड़ा। अचानक मेरे मुँहकी तरफ देखा, ऐसा लगा जैसे प्रण कर रहे हों कि अब देर करना ठीक नहीं, जो कहना हो अभी कह देना चाहिए साफ-साफ। दूसरे ही क्षण कैटलॉगपर निगाह डालते हुए बोले, 'देखती हो सरो, कितना बड़ा नैसटर्शियम है!' कंठमें गहरी थकावट थी। उसके बाद बहुत देर तक कुछ बोले-चाले नहीं, पन्ने उलटते ही गये। फिर एक बार सहसा मेरे मुंहकी तरफ देखा; और चटसे किताब बन्ध करके मेरी गोदमें फेंक दी और चल दिये उठके। मैंने कहा, 'बगीचे चल रहे हैं?' उन्होंने कहा, 'नहीं बहन, बाहर जाना है जरा, जरूरी काम है।' और ऐसे भागे जैसे कोई अपने बन्धनको तोड़कर भागता है।"

"भाई सा'ब तुमसे क्या कहने आये थे, क्या अनुमान है तुम्हारा?"

"कहने आये थे, एक बगीचा तो तुम्हारा पहले ही बरबाद हो चुका है, अब हुक्म आया है कि दूसरा भी खाकमें मिला दो।"

"अगर ऐसा ही हुक्म हुआ, सरो, तो जेल जानेकी स्वाधीनता मेरी जो जाती रहेगी।"

सरला म्लान हँसी हँसकर बोली—"तुम्हारे उस रास्तेको क्या मैं बन्द कर सकती हूं! बादशाह सलामत खुद खुला रखेंगे।"

"तुम डालीसे झड़कर पड़ी रहोगी रास्तेमें, और मैं जंजीर झनकारता हुआ शानके साथ जाऊंगा जेलखाने, ऐसा कभी हो सकता है! अबसे मैं देखता हूं, मुझे इस उमरमें भला-मानस बन जाना पड़ेगा।"

"क्या करोगे तुम ?"

"तुम्हारे अशुभ-ग्रहके साथ युद्धकी घोषणा कर दूंगा मैं। जन्म-पत्रीमेंसे उसे मार भगाऊंगा। उसके बाद लम्बी छुट्टी मिल जायगी, काले-पानीके उस पार तक।"

"तुमसे मैं कुछ भी नहीं छिपा सकती। एक बात मेरे आगे स्पष्ट होती जा रही है कुछ दिनसे। आज उसे कहूंगी, कुछ खयाल न करना।"

"न कहोगी तो जरूर करूंगा।"

"बचपनसे आदित भाई सा'बके साथ एक जगह रहकर इतनी बड़ी हुई हूं। भाई-बहनकी तरह नहीं, भाई-भाईकी तरह। अपने हाथोंसे आस-पास खड़े होकर जमीन खोदी है, पौधे काटकर लगाये हैं। ताईजी और मा दो-तीन दिन आगे-पीछे मरी हैं टॉइफायडमें, तब मेरी उमर थी छै सालकी। उसके दो साल बाद ही बापूजीका देहान्त हो गया। उनके जीवनमें सबसे ज्यादा प्यारी चीज थी बगीचा ; और उन्हें पूरा भरोसा था कि मैं ही उसे जिलाये रखूंगी अपनी सम्पूर्ण जीवनीशक्ति देकर। उसी ढंगसे उन्होंने मुझे गढ़ा था। वे किसीपर अविश्वास करना तो जानते ही न थे। जिन मित्रोंको उन्होंने कर्ज दिया था वे उसे अदा करके बगीचेको बचा लेंगे इसमें उन्हें जरा भी सन्देह न था। कर्ज अदा किया है सिर्फ आदित-भइयाने, और किसीने नहीं किया। इस इतिहासको शायद तुम कुछ-कुछ जानते हो, मगर फिर भी सब बातें शुरूसे कहनेको जी चाहता है।"

"सब-कुछ अब मुझे नया-सा लगता है।"

"इसके बाद, तुम्हें मालूम है, सब-कुछ डूब गया। नैया जब किसी कदर किनारे लगी, तब देखा कि मेरा भाग्य फिरसे आदित भइयाके पास आ लगा है। पहलेकी तरह ही मिल कर एक हो गई, भाई-भाईकी तरह, दो बन्धुओंकी तरह। तबसे आदित-भइयाके आश्रयमें ही रह रही हूं। और जैसा यह सत्य है वैसा यह भी सत्य है कि उन्हें भी मैं अपने आश्रयमें रख रही हूं। नाप-तौलमें मेरी तरफसे कुछ कम नहीं हुआ, यह मैं जोर देकर कह सकती हूं। इसीसे मेरे लिए संकोच करनेकी कोई बात ही नहीं रही। इसके पहले जब हम एकसाथ रहते थे, तब हम लोगोंकी जो उमर थी उस उमरको लेकर ही मानो परस्पर फिर आ मिले, उसी सम्बन्धको लेकर। इसी तरह सारी जिन्दगी कट सकती थी। अब और कहके क्या होगा।"

"बातको खतम कर डालो।"

"अचानक मुझे धक्का देकर क्यों जता दिया गया कि मेरी उमर हो गई है? जिन दिनोंकी ओटमें हम दोनों एकसाथ मिलकर काम कर रहे थे उन दिनोंका परदा हट गया आज एक क्षणमें। तुम जरूर सब बात जानते हो, मेरा कुछ ढका नहीं है तुमसे। मेरे ऊपर भाभीका गुस्सा देखकर पहले तो मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ था, कुछ समझ ही में नहीं आया। अब तक अपने ऊपर दृष्टि नहीं पड़ी थी, भाभीके विरागकी आगकी आभामें अपने आपको दिखाई दी हूं आज मैं, आज अपनी नजरमें पकड़ी गई हूं मैं। मेरी बात समझ रहे हो न तुम?"

"तुम्हारा बचपनका डूबा हुआ प्यार धक्का खाकर ऊपर आके तिरने लगा है आज।"

"मैं क्या करूं बताओ? अपने पाससे आप भागूं भी तो कैसे?"—कहते-कहते उसने रमेनके हाथ पकड़ लिये।

रमेन चुप रहा।

सरला कहने लगी—"जब तक यहां हूं तब तक बढ़ता ही जायगा मेरा कसूर।"

"कसूर किसके प्रति?"

"भाभीके प्रति।"

"देखो सरला, मैं नहीं मानता इन सब पोथी-पत्राकी बातोंको। हकके हिसाबका विचार तुम किस सत्यके आधारपर करोगी? तुम दोनोंका मिलन कितने दिनोंका है, कितना पुराना है; तब कहाँ थीं तुम्हारी भाभी?"

"क्यों कह रहे हो तुम! अपनी इच्छाकी दुहाई देकर यह तुम कैसी ऊटपटांग बात कर रहे हो? आदित भइयाका भी तो खयाल करना चाहिए तुम्हें!"

"चाहिए क्यों नहीं। तुम्हारा क्या खयाल है, तुम क्या सोच रही हो कि जिस चोटने तुम्हें चौंका दिया है वह चोट उन्हें नहीं लगी?"

"रमेन हो क्या?" —पीछेसे आवाज सुनाई दी।

"हाँ भाई साहब।" —रमेन उठ खड़ा हुआ।

"तुम्हारी भाभीने तुम्हें बुलाया है, अभी-अभी आया आई थी बुलाने।"

रमेन चला गया। सरला भी साथ-साथ जानेके लिए उठी।

आदित्यने कहा—"जाओ मत सरो, जरा बैठो।"

आदित्यका चेहरा देखकर सरलाकी छाती फटने लगी। यह लगातार काममें जुता रहनेवाला आप-भूला विशाल पुरुष अब तक मानो भँवरमें चक्कर काट रहा था, टूटी तूफानमें पड़ी पतवार नावकी तरह।

आदित्यने कहा—"हम दोनोंने इस घरमें जिन्दगी शुरू की थी बिलकुल एक होकर। इतना स्वाभाविक हमलोगोंका मेल था कि उसमें कभी किसी कारणसे कोई भेद हो सकता है इस बातकी कल्पना करना भी असम्भव था। क्यों सरो, यही बात है न ?"

"अंकुरमें जो एक होते हैं, बढ़ जानेके बाद वे अलग हो जाते हैं—इस बातको बगैर माने तो कोई रास्ता ही नहीं आदित भइया।"

"वह भेद तो बाहरका है, सिर्फ आँखोंसे देखनेका। भीतर अन्तःकरणमें उसका भाग नहीं होता। आज तुम्हें मेरे पाससे हटा देनेका धक्का आया है। मुझे यह इतना ज्यादा चोट पहुंचायेगा इस बातकी मैं तो कभी कल्पना भी नहीं कर सकता था। सरो, तुम क्या जानती हो अचानक कैसा जबर्दस्त धक्का लगा है हमलोगोंको ?"

"जानती हूं भइया, तुम्हारे जाननेके पहले ही से जानती हूं।"

"सह सकोगी तुम ?"

"सहना ही होगा।"

"मैं सोचता हूं, स्त्रियोंमें सहनेकी शक्ति क्या हमलोगोंसे ज्यादा होती है ?"

"तुम पुरुष हो, दुःखके साथ जूझते रहते हो, हमेशासे पुरुषोंका यही धर्म रहा है; लेकिन हम स्त्रियाँ तो युग-युगमें दुःख सहती ही आई हैं और शायद सहती ही जायेंगी। आँसू और धीरज, इसके सिवा और तो कोई पूंजी नहीं उनके पास।"

"तुम्हें मुझसे कोई तोड़ ले जायगा ऐसा मैं हरगिज न होने दूंगा, हरगिज नहीं। यह अन्याय है, निष्ठुर अन्याय है।"—कहता हुआ वह आकाशके किसी अदृश्य शत्रुसे लड़नेके लिए तैयार हो गया।

सरला उसका हाथ अपने हाथमें लेकर धीरे-धीरे उसपर हाथ फेरने लगी। और ऐसे बात करती गई जैसे अपने आपसे ही कह रही हो—"न्याय-अन्यायकी बात नहीं भइया, सम्बन्धके बन्धनका जब परदाफाश हो जाता है तब उसकी व्यथा चोट पहुंचाती है बहुतोंको, खींचातानी पड़ जाती है चारों तरफ, दोष दूं तो किसे?"

"तुम नहीं सह सकोगी, सरो, यह मैं जानता हूं। एक दिन की बात मुझे याद है। कैसे बाल थे तुम्हारे, अब भी हैं। अपने बालोंका गर्व था तुम्हारे मनमें। सभी-कोई उस गर्वको चढ़ाते रहते थे। एक दिन लड़ाई हो गई तुमसे। दोपहरको तकियेपर बाल फैलाकर तुम सो गई थीं, मैं कैंची हाथमें लिये दबे-पाँव पहुंच गया और कमसे कम बिलस्त-भर बाल काट दिये। उसी वक्त तुम जागकर खड़ी हो गईं, तुम्हारी ये काली आँखें और भी ज्यादा काली हो उठीं। तुमने कहा, 'सोचा होगा इससे मैं काबूमें आ जाऊंगा?' कहकर मेरे हाथसे कैंची छीन ली और

गरदन तक अपने सब वाल कच-कच काटके फेंक दिये। मौसाजी तुम्हें देखके दंग रह गये। बोले, 'यह क्या कर डाला!' तुमने शान्त चेहरेसे आसानीसे जवाब दिया, 'बड़ी गरमी लगती थी।' उन्होंने भी जरा-सा मुसकराकर सहज ही में मान लिया। न कुछ पूछा-ताछा, न डाटा-फटकारा, सिर्फ कैंची उठाकर सब बाल बराबर कर दिये। वे तुम्हारे ही तो ताऊ थे।"

सरलाने हँसकर कहा—"तुम्हारी बुद्धिकी बलिहारी है। तुमने समझा होगा वह मेरी क्षमाका परिचय है? जरा भी नहीं। उस दिन तुमने मुझे जितना सताया था उससे कहीं ज्यादा मैंने परेशान कर दिया था। ठीक है कि नहीं बताओ?"

"बिलकुल ठीक। कटे हुए उन बालोंको देखकर मेरे लिए सिर्फ रोना ही बाकी रह गया था। उसके दूसरे दिन मारे शरमके मुँह ही नहीं दिखा सका मैं तुम्हें। पढ़नेके कमरेमें चुपचाप बैठा था। तुम कमरेमें आईं और मेरा हाथ पकड़कर घसीट ले गईं बगीचेमें काम करनेके लिए, ऐसे जैसे कुछ हुआ ही न हो। और एक दिनकी बात है। उसी दिनकी जिस दिन फागुनमें बड़ी-भारी आँधी आई थी, और मेरी बगीचेवाली झोंपड़ीका छप्पर उड़ा ले गई थी, तब तुमने आकर—"

"रहने दो अब, समझ गई।"—गहरी साँस लेते हुए सरला ने कहा—"वे दिन अब नहीं आनेके।" और जल्दीसे उठ खड़ी हुई।

आदित्य व्याकुल हो उठा और सरलाका हाथ पकड़कर बोला, "नहीं नहीं जाओ मत, अभी मत जाओ; किसी एक दिन जब

जानेका वक्त आयेगा तब"— कहते-कहते वह उत्तेजित हो उठा—"लेकिन किसी दिन क्यों जाना होगा? कसूर क्या किया है तुमने? ईर्ष्या, डाह? आज दस सालसे गार्हस्थिक जीवनकी मेरी परीक्षा होती रही उसका यही नतीजा है! आखिर किस बातपर ईर्ष्या है यह? यों तो तेईस सालके इतिहासको पोंछके मिटा देना होगा, जबसे तुम्हें मैंने देखा है!"

"तेईस सालकी बात मैं नहीं कह सकती, आदित भइया, लेकिन तेईस सालकी इन अन्तिम घड़ियोंमें डाहका क्या कोई कारण ही नहीं हुआ? सच बात तो कहनी ही पड़ेगी। अपनेको धोखा देनेसे फायदा क्या? तुम्हारे मेरे बीच कोई भी बात अस्पष्ट न रहनी चाहिए।"

आदित्य कुछ देर तक स्तब्ध होकर बैठा रहा, फिर बोल उठा—"अस्पष्ट अब नहीं रहा। मैं भीतर-ही-भीतर समझ रहा हूं, तुम्हारे बगैर मेरी दुनिया व्यर्थ हो जायगी। अपने जीवनकी प्रथम घड़ियोंमें मैंने जिनसे तुम्हें पाया था उनके सिवा और कोई भी तुम्हें मुझसे छीन नहीं सकेगा।"

"बात करके दुःखको और भी ज्यादा बढ़ाओ मत आदित भइया, जरा स्थिर होकर सोचने दो।"

"सोचना लेकर तो पीछेकी तरफ नहीं जाया जा सकता। हम दोनोंने जब जीवन शुरू किया था मौसाजीकी गोदके पास, वो तो बगैर सोचे-विचारे ही किया था। आज क्या उन दिनोंको किसी कदर जड़से उखाड़ फेंक सकती हो? तुम्हारी बात मैं नहीं कह सकता, सरो, पर मेरे लिए तो बूतेसे बाहरकी बात है।"

"तुम्हारे पैरों पड़ती हूं, कमजोर मत करो मुझे। उद्धारका रास्ता मेरे लिए दुगम न बनाओ।"

आदित्य सरलाके दोनों हाथ पकड़कर कह उठा—"उद्धारका रास्ता नहीं है सरला, उस रास्तेको मैं नहीं रहने दूंगा। मैं तुम्हें प्यार करता हूं, यह बात आज इतनी आसानीसे सच-सच कह सका इससे मेरी छाती भर उठी है। तेईस साल तक जो गुल था कलीके अन्दर, वह आज दैवकी कृपासे खिल उठा है। मैं कहता हूं, उसे अगर दबाया गया तो वह होगी कायरता, वह होगा अधर्म।"

"चुप चुप, अब ज्यादा मत कहो। आजकी रातके लिए माफी दो, माफ करो मुझे।"

"सरो, मैं ही कृपाका पात्र हूं, जीवनके अन्तिम दिन तक मैं ही तुम्हारे लिए क्षमाके योग्य रहूंगा। क्यों, क्यों मैं अन्धा रहा? क्यों मैंने तुम्हें नहीं पहचाना, क्यों ब्याह किया मैंने गलतीसे? तुमने तो नहीं किया, कितने वर आये तुम्हारी कामना लिये-हुए, मुझसे तो कुछ छिपा नहीं।"

"ताऊजीने मुझे जो समर्पित कर दिया था अपने बगीचेके लिए, नहीं तो शायद—"

"नहीं नहीं, तुम्हारे मनकी गहराईमें मौजूद था तुम्हारा उज्ज्वल सत्य। बिना जाने ही उसके पास तुमने अपनेको गिरवी रख छोड़ा था। मुझे तुमने क्यों नहीं चेता दिया? हम दोनों का रास्ता क्यों हो गया जुदा-जुदा?"

"रहने दो, रहने दो, जिसे मान ही लेना पड़ेगा उसे न

माननेके लिए झगड़ा कर रहे हो किसके साथ? क्या होगा झूठ-मूठको तड़पकर? कल दिनके वक्त जैसा बनेगा तय कर लिया जायगा।"

"अच्छा, मैं चुप रहता हूं। लेकिन ऐसी चाँदनी रातमें मेरी तरफसे बात कर सके ऐसी एक चीज रख जाऊंगा तुम्हारे पास।"

बगीचेमें काम करनेके लिए आदित्यकी कमरसे एक झोली बँधी रहती है, कुछ-न-कुछ रखनेकी जरूरत पड़ती ही है। उस झोलीमेंसे निकाला उसने पाँच नागकेशर फूलोंका बँधा हुआ एक छोटा-सा गुच्छा। बोला—"मैं जानता हूं नागकेशर तुम्हें बहुत प्यारा है। *तुम्हारे कँधेपर पड़े हुए आँचलके ऊपर इसे लगा दूँ?* यह रही सेफ्टिपिन।"

सरलाने कोई आपत्ति नहीं की। आदित्यने मनमाना समय लेकर उसे कँधेके पास लगा दिया। सरला उठके खड़ी हो गई, आदित्य सामने खड़ा था; उसने सरलाके दोनों हाथ पकड़ लिये और उसके मुँहकी ओर देखता रहा जैसे आकाशका चाँद देख रहा है।

सरला हाथ छुड़ाकर भाग खड़ी हुई। आदित्यने उसका पीछा नहीं किया; जब तक दिखाई दी चुपचाप खड़ा-खड़ा देखता रहा। उसके बाद बैठ गया घाटकी उस वेदीपर। नौकरने आकर खबर दी—"रसोई तैयार है।"

आदित्यने कहा—"आज मैं नहीं खाऊंगा।"

६

रमेनने दरवाजेके पाससे पूछा—"भाभी, बुला रहीं थीं ?"

नीरजा रुँधे हुए गलेको साफ करके बोली—"आओ।"

कमरेकी सब बत्तियाँ बुझी हुई थीं। खिड़कियाँ खुली हैं ; चाँदनी पड़ रही है बिस्तरपर, नीरजाके चेहरेपर और सिरहानेके पास आदित्यके दिये हुए लैबर्नमके गुच्छेपर। बाकी सब अस्पष्ट है। तकियेके सहारे नीरजा अधलेटी पड़ी है, खिड़कीके बाहर दूर आकाशकी तरफ निगाह है उसकी। उधर ऑरकिड-घरको पार करके दिखाई दे रही है सुपारीके पेड़ोंकी कतार। अभी तुरत हवा जागी है, पत्ते हिल उठे हैं, आमके बौरोंसे महक आ रही है। बहुत दूरसे सुनाई दे रहा है ग्राम्य-गीत, ढोलकपर बस्तीके लोग होली गा रहे हैं। नीचे फर्शपर पड़ी हुई है एक थाली, उसमें कुछ बरफियाँ पड़ी हैं और थोड़ा-सा अबीर। दरबान भेंट दे गया है। रोगीके आराममें खलल न पड़े इसलिए सारा मकान आज निस्तब्ध है। पेड़ोंपर वसन्तकी चिड़ियोंका सवाल-जवाब चल रहा है 'पिउ कहाँ' 'पिउ यहाँ' ; कोई भी हार नहीं मानना चाहती। रमेन मोंढ़ा खींचकर बैठ गया नीरजाके पलंगके पास। कहीं रुलाई न आ जाय इस डरसे नीरजा बहुत देर तक कुछ बोली नहीं। उसके ओठ काँपने लगे। गलेके पास वेदनाका मानो तूफान-सा घुमड़ने लगा। कुछ देरमें उसने अपनेको सम्हाल लिया ; लैबर्नमके गुच्छेसे झड़े हुए दो फूल जो उसकी मुट्ठीमें थे, पिस गये। उसके बाद, मुंहसे कुछ कहा

नहीं, सिर्फ एक चिट्ठी निकालकर रमेनके हाथमें दे दी। चिट्ठी आदित्यकी लिखी हुई थी। उसमें लिखा है—

"इतने दिनके परिचयके बाद आज अकस्मात् ही देखा गया कि मेरी निष्ठापर सन्देह करना अब भी सम्भव बना रहा तुम्हारे लिए। इस विषयको लेकर बहस करना मेरे लिए और भी शर्मकी बात है। तुम्हारे मनकी मौजूदा हालतमें मेरी सभी बातें और सभी काम उलटे मालूम होंगे तुम्हें। और इस तरहका अकारण पीड़न तुम्हारे कमजोर शरीरको चोट पहुंचाकर नुकसान ही पहुंचायेगी। मेरे लिए यही अच्छा है कि जब तक तुम्हारा चित्त स्वस्थ न हो, मैं दूर ही रहूं। मैंने समझ लिया, तुम चाहती हो कि सरलाको यहाँसे मैं विदा कर दूँ। शायद करना भी पड़ेगा। मैंने खूब सोचा है, इसके सिवा और कोई चारा ही नहीं। फिर भी मैं कहता हूं तुमसे, मेरी शिक्षा-दीक्षा उन्नति सब-कुछ सरलाके ताऊजीकी ही बदौलत हुई है; मेरे जीवनमें सार्थकताका रास्ता उन्हींने दिखाया है। उन्हींके स्नेहका धन है सरला, सर्वस्वान्त निःसहाय। आज उसे अगर यों ही बहा दूँ तो वह अधर्म होगा। तुम्हारे प्रेमकी खातिर भी मुझसे यह अधर्म करते नहीं बनेगा।

"बहुत सोच-विचारकर मैंने तय किया है कि अपने कारोबार में एक नया विभाग खोलूंगा, फूल और सब्जियोंके बीज बेचनेका विभाग। मानिकतल्लामें मकान-समेत बगीचा मिल सकता है। वहीं सरलाको बिठा दूँगा। इस कामको शुरू करने लायक नगद रुपये नहीं हैं मेरे हाथमें। अपने इस बगीचेको गिरवी

रखकर रुपये लेने पड़ेंगे। इस बातसे तुम नाराज न होना, मेरा विशेष अनुरोध है। इस बातको न भूलना कि सरलाके ताऊने इस बगीचेके लिए मुझे मूलधन बिना ब्याजके उधार दिया था। इसके लिए, सुना था कि उन्हें और किसीसे थोड़ा-बहुत उधार लेना पड़ा था। सिर्फ इतना ही नहीं, काम शुरू करने लायक बीज, कलमी पेड़, दुर्लभ फूलोंके पौधे, ऑरकिड, घास काटनेकी मशीन तथा और-भी बहुतसे कामके औजार वगैरह विनामूल्य दान किये थे उन्होंने। इतनी जबरदस्त सहायता वे अगर न देते तो आज तीस रुपयेकी क्लर्की करनी पड़ती मुझे, और तुम्हारे साथ ब्याह करना मेरी तकदीरसे बहुत दूर ही रह जाता। तुम्हारे साथ बातचीत होनेके बाद यही एक प्रश्न मेरे मनमें बार-बार उठ रहा है कि 'सरलाको मैंने आश्रय दिया है, या उसके आश्रयमें रहकर मैं यहाँ तक पहुंचा हूं?' इस सहज-स्वाभाविक बातको मैं अब तक भूला हुआ था, तुम्हींने मुझे याद दिला दिया। अब तुम्हें भी याद रखना होगा। तुम यह कभी भी न सोचना कि सरला मेरे लिए फजूलका एक बोझ या जंजाल है। उन लोगोंका ऋण मैं कभी भी नहीं चुका सकता, और न मुझपर उसके हककी ही हद है। तुम्हारे साथ उसकी कभी भी मुलाकात न हो, इस बातका खयाल रहेगा मेरे मनमें। पर, मेरे साथ उसका सम्बन्ध कभी भी विच्छिन्न नहीं हो सकता, और यह बात आज जैसे मेरी समझमें आई है, पहले कभी नहीं आई। सब बात मैं नहीं कह सका, मेरा दुःख आज बातोंके अतीत हो चुका है। अगर अन्दाजसे समझ सको तो समझ जाओ, नहीं तो

जीवनकी यह मेरी पहली वेदना है जो तुमसे भी छिपी रही।"

रमेनने चिट्ठी दो बार पढ़ी ; और पढ़कर चुप हो रहा।

नीरजाने व्याकुल स्वरमें कहा—"कुछ तो बोलो लालाजी ?"

रमेनने फिर भी कोई जवाब नहीं दिया।

और नीरजा औंधी होकर बिस्तरपर अपना सिर धुनने लगी, बोली—"बड़ी गलती की मैंने, बड़ा अन्याय किया। लेकिन, तुम लोगोंमेंसे क्या कोई भी इतना नहीं समझ सकते कि किसने मेरा दिमाग खराब कर दिया ?"

"क्या कर रही हो भाभी, शान्त होओ, तुम्हारी तबीयत खराब हो जायगी।"

"इस खराब तबीयतने ही तो मेरी तकदीर खराब कर दी है, इसके लिए ममता करूँ तो किस लिए ? उनपर मेरा अविश्वास, कहाँसे आया यह ? यह तो अपनी नाकाम जिन्दगीको लेकर खुद अपने ही ऊपर अविश्वास है। आज उनकी वह 'नीरो' कहाँ है जिसे वे कभी कहते थे 'मालिनी', 'कभी कहते थे 'वनलक्ष्मी' ? आज किसने छीन लिया उसका वह उपवन ? मेरा क्या एक ही नाम था ? जिस दिन उन्हें काम पूरा करके घर लौटनेमें देर होती उस दिन मैं रसोई लेकर बैठी ही रहती उनकी इन्तजारीमें ; तब वे मुझे कहते, 'अन्नपूर्णा'। शामको वे झीलके किनारे बैठते और मैं चाँदीकी रकाबीमें चमेलीके फूल सजाकर उसपर पान रखके ले जाती ; वे हँसकर मुझसे कहते, 'ताम्बूलकरबाहिनी', तब घर-गृहस्थीकी सभी बातोंकी सलाह मुझसे ही किया करते थे। कभी

कहते 'गृहसचिव' और कभी कहते 'होम-सेक्रेटरी'। मानो मैं सावन-भादोंकी भरी नदी थी, समुद्रमें जा मिली थी, चारों तरफ मेरी शाखाएँ फैली हुई थीं ; और आज, आज सब सूख गईं एक ही क्षणमें, निकल आया पत्थर और बालू !"

"भाभी, फिर तुम अच्छी हो जाओगी, फिर तुम अपनी जगह ले लोगी अपनी पूरी शक्तिसे।"

"झूठी उम्मीद न दिलाओ लालाजी। डाक्टर क्या कहते हैं, मैं भी सुन लेती हूं। इसीसे इतने दिनोंकी सुखकी घर-गृहस्थीको फिरसे पानेके लिए मेरी यह निराश-कङ्गाली है।"

"जरूरत क्या है भाभी? अपनेको तो तुम शुरूसे लेकर अब तक पूरी तरह उँड़ेलती ही रही हो अपनी घर-गृहस्थीमें। उससे बढ़कर और कोई बात है क्या? जैसे दिया है वैसे ही पाया है, इतना ही कितनी स्त्रियाँ पाती हैं? अगर डाक्टरोंकी बात सच ही हो, जानेके दिन अगर आ ही गये हों, तो जिसे बड़े रूपमें पाया है उसे बड़े रूपमें ही छोड़ जाओ। इतने दिन जिस गौरवमें जिन्दगी बिताई है उस गौरवको घटाकर क्यों जाओगी? इस घरमें अपनी अन्तिम स्मृतिको जाते वक्त तुम नई महिमा देती जाओ भाभी।"

"छाती फटी जाती है लालाजी, छाती फटी जाती है। अपने इतने दिनोंके आनन्दको ज्योंका त्यों रखकर मैं हँसती हुई ही चली जा सकती थी; लेकिन क्या कहीं जरा-सी कोई एक सँध न रहेगी जहाँ मेरे विरहका एक छोटा-सा दीआ टिमटिमाता रहे? जब यह बात सोचती हूं तो मरनेकी भी इच्छा नहीं

होगी, वो सरला, सरला ही मेरे सब कुछपर दखल जमा लेगी पूरी तौरसे, यही न्याय है विधाताका ?"

"सच बात कहूंगा भाभी, गुस्सा मत होना। तुम्हारी बात मेरी समझमें नहीं आती ठीक-ठीक। जिसे तुम खुद नहीं भोग सकतीं, उसे भी तुम प्रसन्न मनसे दान नहीं कर सकतीं जिसे अब तक इतना देती रही हो ? तुम्हारे प्रेमपर इतना बड़ा एक उलाहना रह जायगा ? अपनी घर-गृहस्थीमें अपने श्रद्धाके दीपको तुम खुद ही आज चकनाचूर करके कतई मिटा देना चाहती हो ? उसकी व्यथासे तुम बचके निकल जाना चाहती हो, पर हमेशा वह हम लोगोंके हृदयमें काँटेकी तरह चुभती रहेगी। मैं हाथ जोड़के बिनती करता हूं भाभी, तुम अपने सम्पूर्ण जीवनकी सारी उदारता को इन अन्तिम घड़ियोंमें इस तरह कंजूस न बनाती जाओ।"

सिसक-सिसककर रोने लगी नीरजा। रमेन चुपचाप बैठा रहा, सान्त्वना देनेकी कोशिश तक नहीं की उसने। रोनेका वेग जब थम गया, नीरजा उठके बैठ गई बिस्तरपर। बोली—"मेरी एक भीख है तुमसे लालाजी।"

"आज्ञा दो भाभी।"

"सुनो मैं कहती हूं। जब आँसुओंसे भीतर-ही-भीतर हृदय भर जाता है तब मैं उस परमहंसदेवकी तसवीरकी ओर देखती रहती हूं। पर उनकी वाणी तो हृदय तक पहुंचती नहीं ? मेरा मन बहुत ही छोटा है। जिस तरह बने मुझे गुरुकी खोज दो। नहीं तो बन्धन नहीं कटनेका। आसक्तिमें लिपटी ही रह जाऊँगी। जिस घरमें सुखकी जिन्दगी बिताई है, मरनेके बाद

वहीं मुझे दुःखकी हवामें युग-युगान्तर तक रो-रोकर भटकना पड़ेगा; उससे उद्धार करो मेरा, उद्धार करो।"

"तुम तो जानती हो भाभी, शास्त्रोंमें जिसे पाखण्डी कहा गया है, मैं वही हूँ। कुछ भी नहीं मानता। प्रभास बहुत ही पीछे पकड़कर मुझे एक बार अपने गुरुके पास ले गया था। पर बाँधे जानेके पहले ही मैं भाग खड़ा हुआ। जेलखानेकी एक मियाद है, ये सब बन्धन बेमियादी हैं।"

"लालाजी, तुम्हारा मन जबरदस्त है, तुम किसी भी तरह नहीं समझ सकते मेरी व्यथा। मैं खूब समझ रही हूं, जितनी ही मैं फड़फड़ा रही हूं उतनी ही डूबती जाती हूं अथाह पानीमें। अपनेको सम्हालते नहीं बनता मुझसे।"

"भाभी, एक बात कहता हूं सुनो। जब तक तुम यह महसूस करती रहोगी कि तुम्हारा धन कोई-और छीने लिये जा रहा है तुम्हारे हृदयकी पसलियाँ जलती ही रहेंगी आगमें। हरगिज नहीं पाओगी शान्ति। लेकिन जरा स्थिर होकर बैठके कहो तो सही, 'दे दिया मैंने। सबसे बढ़कर, सबसे कीमती जो कुछ भी है मेरा, सबसे ज्यादा प्यारका, सबसे ज्यादा अपना उस सबको दे डाला मैंने।' देखोगी, सब भार उतर गया तुम्हारा, कितनी हलकी महसूस करोगी अपनेको। मन भर उठेगा आनन्दसे। गुरुकी जरूरत नहीं, अभी कहो तुरत, 'दे दिया, दे दिया, कुछ भी नहीं रखा अपने लिए, अपना सब कुछ दे दिया; निर्मल मुक्त होकर जानेके लिए तैयार हूं, दुःखकी कोई भी गाँठ बँधी नहीं छोड़ी मैंने' कहो।"

"अहा, कहो कहो, लालाजी, बार-बार सुनाते चले जाओ मुक्तिका यह मन्त्र। उन्हें अब तक जो कुछ भी दिया है उसीमें आनन्द पाया है मैंने, आज जो दे नहीं पा रही हूं वही इस तरह मार रहा है मुझे। दूंगी, दूंगी, दूंगी अपना सब-कुछ दे डालूँगी; अब देरका काम नहीं, अभी दूंगी, सब दे डालूंगी। तुम उन्हें बुलाओ जल्दी।"

"आज नहीं भाभी, कुछ दिनोंमें अपने मनको अच्छी तरह बाँध लो; आसान कर लो अपने संकल्पको।"

"नहीं नहीं, अब नहीं सहा जाता मुझसे। जबसे वे कह गये हैं, इस घरको छोड़के वे जापानी-घरमें जाकर रहेंगे, तबसे यह शय्या मेरे लिए चिता-शय्या हो उठी है। अगर वे वापस नहीं आये तो आजकी रात भी न कटेगी, छाती फाड़कर मर जाऊँगी। साथ ही सरलाको भी बुलाते लाना, छातीमें चुभे हुए काँटेको मैं जड़से उखाड़कर फेंक दूंगी आज, जरा भी न डरूँगी, तुमसे मैं सच कहती हूं।"

"समय अभी नहीं हुआ, भाभी, आज रहने दो।"

"समय निकल न जाय, मुझे यही डर है। अभी तुरत बुला लाओ।"—परमहंस देवीकी तसवीरकी ओर देखकर दोनों हाथ जोड़के बोली—"शक्ति दो देव, शक्ति दो मुझे, मुक्ति दो मतिहीन अधम नारीको। मेरे दुःखने मेरे भगवानको दूर रख छोड़ा है, पूजा-अर्चना सब-कुछ गई मेरी। लालाजी, एक बात तुमसे कहूंगी, तुम नहीं नाहीं करना।"

"क्या, बोलो?"

"एक बार मुझे मन्दिरमें जाने दो दस मिनटके लिए, इससे मुझे बल मिलेगा, कोई डर न रहेगा।"

"अच्छा जाओ, मैं नहीं रोकूँगा।"

"आया !"

"क्या बिटिया ?"

"मन्दिरमें ले चल जरा मुझे।"

"उठोगी तुम ! डाक्टर साहब तो—"

"तेरे डाक्टर साहबसे जमराज ही रोके नहीं रुकता तो देवता को वे क्या रोकेंगे ?"

"आया, तुम इन्हें ले जाओ, कोई डर नहीं, अच्छा ही होगा।"

आयाके कंधेपर हाथ रखकर नीरजा बाहर चली गई। इतनेमें आदित्यने कदम रखा कमरेमें। आते ही पूछा—"यह क्या, नीरू कहाँ गई ?"

"अभी आ रही हैं, मन्दिरमें गई हैं।"

"मन्दिरमें ? वो तो नजदीक नहीं है। डाक्टरकी मनाही है जो चलने-फिरनेकी।"

"किसीकी मत सुनो भाई सा'ब ! डाक्टरकी दवासे ज्यादा काम होगा इससे। सिर्फ फूलोंकी अंजलि चढ़ाकर अभी लौट आयेंगी ढोक देकर।"

जब उसने चिट्ठी लिखकर नीरजाको भेजी थी तब उसे स्पष्ट नहीं मालूम था कि विधाताने उसके जीवन-पटपर पहलेसे ही जो लेख अदृश्य स्याहीसे लिख रख रखा है बाहरका ताप लगकर वह अचानक इस तरह उज्ज्वल हो उठेगा। सरलासे वह कहने आया

था, 'अब कोई उपाय नहीं, साथ छोड़ना ही पड़ेगा।' लेकिन कहते वक्त उसके मूँहसे निकली बिलकुल उलटी बात। उसके बाद चाँदनी रातमें घाटमें बैठा-बैठा वह बार-बार मन-ही-मन दुहराता रहा है—जीवनका सत्य देरसे जरूर मालूम हुआ है, पर इससे वह अस्वीकार नहीं किया जा सकता। उसका तो कोई कसूर ही नहीं इसमें, शरमकी तो कोई बात ही नहीं उसके लिए। अन्याय तभी होगा जब वह सत्यको छिपाना चाहेगा। नहीं छिपायेगा वह, तय कर लिया है, नतीजा चाहे कुछ भी क्यों न हो। इस बातको वह अच्छी तरह समझ गया है कि अपने जीवनके केन्द्रसे कार्यके क्षेत्रसे सरलाको आज वह डाट दे, तो उस अकेलेपनमें उस नीरसतामें उसका सब-कुछ नष्ट हो जायगा, उसका काम-धन्धा तक चौपट हो जायगा।

"रमेन, तुम्हें हमलोगोंकी सब बात मालूम है, मैं जानता हूं।"

"हाँ मालूम है।"

"आज चुका दूंगा सब, फारखतीका दिन है आज मेरा। आज परदा उठाकर सब साफ कर दूंगा।"

"तुम तो अकेले नहीं हो भाई साहब! सिरसे बोझ पटककर ही तो छुट्टी नहीं पा सकते। भाभी हैं इधर। संसारकी गाँठ बड़ी उलझी हुई है।"

"तुम्हारी भाभी और मेरे बीच आज जो असत्य आ खड़ा हुआ है उसे मैं हरगिज न रहने दूंगा। बचपनसे सरलाके हाथ मेरा जो सम्बन्ध है उसमें कोई अपराध नहीं, इस बातको तुम मानते हो?"

"मानता क्यों नहीं।"

"उस सहज-स्वाभाविक सम्बन्धके नीचे दबा हुआ था गहरा प्रेम, तब मैं नहीं जान पाया था, यह क्या मेरा दोष है ?"

"कौन कहता है दोष है ?"

"आज उसी बातको अगर छिपा जाऊँ तो वह होगा मिथ्या आचरणका अपराध। इस बातको मैं सिर उठाकर कहूंगा।"

"छिपाओगे क्यों, और समारोहके साथ जाहिर करनेकी भी ऐसी क्या आवश्यकता है ? भाभीके लिए जितना जानना जरूरी है उतना वे अपने आप ही जान चुकी हैं। और कुछ दिन बाद ही तो परम दुःखकी यह जटा अपने-आप ढीली हो जानेवाली है। तुम उसे लेकर व्यर्थमें खींचातानी मत करो। भाभी जो कहना चाहती हैं, सुन लो। उसके उत्तरमें तुम्हें जो-कुछ कहना चाहिए वह अपने-आप ही आसान हो जायगा।"

नीरजाको भीतर आते देख रमेन उठके बाहर चला गया।

कमरेमें आदित्यको देखते ही नीरजा जमीनपर लोट गई; और पतिके पाँवोंपर सिर रखकर अश्रु-गद्‌गद कंठसे कहने लगी—"माफ़ करो मुझे, अपराध किया है मैंने, अपराधिनी हूं मैं। इतने दिनों बाद मुझे मत त्यागो, अपनेसे दूर मत फेंको मुझे।"

आदित्यने दोनों हाथोंसे उसे उठाकर छातीसे लगाकर धीरेसे बिस्तरपर लिटा दिया। बोला—"नीरू, तुम्हारी वेदना क्या मैं नहीं समझता ?"

नीरजाकी रुलाई बन्द ही नहीं होना चाहती। आदित्य धीरे-धीरे उसके माथेपर हाथ फेरने लगा। नीरजाने उसका हाथ

खींचकर अपनी छातीसे लगा लिया; बोली—"सच बताओ, तुमने मुझे माफ कर दिया? तुम प्रसन्न न होगे तो मरनेके बाद भी मुझे सुख नहीं मिलेगा।"

"तुम तो जानती हो नीरू, बीच-बीचमें अनबन हुई है हम दोनोंमें, पर मनका मेल क्या टूटा है उससे कभी?"

"इसके पहले कभी किसी दिन तो तुम घर छोड़कर नहीं चले गये। अबकी क्यों गये? इतना निष्ठुर तुम्हें किसने कर दिया?"

"अन्याय हो गया है मुझसे नीरू, तुम्हें माफ करना होगा।"

"क्या कहते हो जिसका ठीक नहीं! मुझे तो तुम्हींसे मिलता है, सजा और इनाम सब-कुछ। तुमसे रूठकर अभिमानिनी बनकर मैं जो तुम्हारा विचार करने बैठी उसीसे तो मेरी यह दशा है। लालाजीसे कहा था, सरलाको बुला लानेके लिए, अभी तक आये क्यों नहीं?"

सरलाको बुलानेकी बात सुनकर आदित्यका जी धक हो उठा। इस समस्याको कमसे कम आज-भरके लिए अलग रख सकता तो उसे तसल्ली मिलती। उसने कहा—"रात हो चुकी है, अभी रहने दो।" इतनेमें नीरजा बोल उठी—"सुनो सुनो, मुझे लगता है दरवाजेके बाहर खड़े हैं दोनों। लालाजी, भीतर आ जाओ दोनों।"

सरलाको लेकर रमेन भीतर आया। नीरजा बिस्तर छोड़कर खड़ी हो गई। सरलाने पाँव छूकर प्रणाम किया नीरजाको। नीरजाने कहा—"आओ बहन, मेरे पास आओ।"

हाथ पकड़कर सरलाको उसने अपने बिस्तरपर बिठा लिया। तकियाके नीचेसे गहनेका बक्स निकालकर एक मोतीका हार निकाला और उसे सरलाके गलेमें पहना दिया। बोली—"एक दिन चाहा था कि जब चितामें मेरी देह जलेगी तब मेरे गलेमें यह हार बना रहे। पर उससे यही अच्छा है। मेरी तरफसे तुम्हीं इस हारको गलेमें पहने रहो, आखिरी दिन तक। खास खास दिनोंमें इस हारको मैंने कितनी बार पहना है, सो तुम्हारे भाई साहब जानते हैं। तुम्हारे गलेमें रहनेसे वे दिन उन्हें याद आया करेंगे।"

"अयोग्य हूं मैं जीजी, अयोग्य हूं, क्यों मुझे शर्मिन्दा करती हो ?"

नीरजाने समझा था कि आज उसके सर्वस्वदान-यज्ञका यह भी एक अंग है। पर उसके अन्तःकरणमें छिपी हुई मनकी ज्वाला इसी दानमें दीप्त होकर प्रकट हो उठी, इस बातको वह खुद भी स्पष्ट न समझ पाई थी। इस घटनाने सरलाको कितनी चोट पहुंचाई इसको महसूस किया आदित्यने। बोला—"यह हार मुझे दे दो न, सरला! इसकी कीमत मेरे लिए जितनी है उतनी और-किसीके लिए नहीं। इसे मैं और-किसीको नहीं दे सकता।"

नीरजाने कहा—"मेरा भाग्य है। इतनेपर भी मैं नहीं समझ पाई शायद! सरला, सुना था कि इस बगीचेसे तुम्हें जाना पड़ेगा। ऐसा मैं कभी न होने दूंगी। मैं तुम्हें अपने घरके सब-कुछके साथ बाँध रखूंगी, यह हार उसीकी निशानी है। यही मेरा बन्धन है, तुम्हारे हाथ इसीलिए सौंपा है कि मैं निश्चिन्त होकर मर सकूं।"

"गलती कर रही हो जीजी, मुझे बाँधनेकी मत सोचो, उसमें भलाई नहीं है।"

"यह कैसी बात ?"

मैं सच कह रही हूं। अब तक मुझे विश्वास कर सकती थीं। पर आज, आज मुझे विश्वास मत करो, सबके सामने मैं कह रही हूं। भाग्यने जिस दानसे मुझे वंचित रखा है, किसीको वंचित करके उस दानको मैं हरगिज न लूंगी। तुम्हारे पाँवोंमें मेरा प्रणाम है। मैं चल दी। अपराध मेरा नहीं है, अपराध है मेरे उन देवताका जिनकी रोज दोनों वक्त सरल विश्वासके साथ मैंने पूजा की है। वह भी आज मेरे लिए खतम हो गये।"

इतना कहकर सरला तेजीसे कमरेसे निकल गई। आदित्य अपनेको पड़कके न रख सका, वह भी चल दिया पीछे-पीछे।

"लालाजी, यह क्या हो गया लालाजी! बताओ लालाजी, बोलो, बोलो, बात करो।"

"इसीलिए कहा था मैंने कि आज रातको मत बुलाओ।"

"क्यों, मन खोलकर मैंने तो सब कुछ दे दिया। उसने क्या इतना भी नहीं समझा ?"

"समझा क्यों नहीं। यही समझा कि मन तुम्हारा नहीं खुला। सुर ठीक नहीं बजा।"

"किसी भी तरह विशुद्ध नहीं हुआ मेरा मन! इतनी मार खानेपर भी ? कौन विशुद्ध कर देगा अब ? अरे ओ संन्यासी, मुझे बचाओ न। लालाजी, कौन है मेरा अपना, किसके पास जाऊँ मैं ?"

"मैं हूं भाभी, तुम्हारा, सारा सङ्कट मैं ले लूंगा अपने ऊपर। अब तुम सो जाओ।"

"कैसे सोऊँ? इस मकानसे फिर अगर वे चले जायँ तो बिना मरे मुझे नींद नहीं आनेकी।"

"जा तो वे हरगिज नहीं सकते। यह बात न तो उनकी इच्छामें है और न शक्तिमें ही। यह लो नींदकी दवा, तुम्हें सुलाकर तब मैं जाऊँगा।"

"जाओ लालाजी, तुम जाओ, दोनोंके दोनों कहाँ गये देख आओ, नहीं तो मैं खुद ही जाऊँगी उठकर, भले ही कल प्राण निकलें सो आज ही निकल जायँ।"

"अच्छा अच्छा, मैं जाता हूं।"

७

अपने पीछे-पीछे आदित्यको आते देख सरलाने कहा—"तुम क्यों आये? अच्छा नहीं किया। लौट जाओ। अपने साथ मैं तुम्हें इस तरह लिपटने न दूंगी।"

"तुम दोगी या नहीं यह तो बादकी बात है, मैं खुद ही जो लिपट चुका हूं। चाहे वह अच्छा हो या बुरा, उसमें हमलोगोंका कोई हाथ नहीं।"

"ये बातें पीछे होंगी, पहले तुम लौट जाओ, बीमारको तसल्ली दो, शान्त करो।"

"अपने बगीचेकी एक और शाखा बढ़ाऊँगा, उस विषयमें—"

"आज रहने दो। मुझे दो-चार दिन सोचनेका समय दो, इस वक्त मेरे अन्दर सोचनेकी शक्ति नहीं है।"

रमेननने आकर कहा—"जाओ भाई सा'ब, भाभीको दवा देकर सुला दो, देर मत करो। बात उन्हें हरगिज न करने दीजियेगा। रात काफी हो चुकी है।"

आदित्यके चले जानेपर सरला बोली—"श्रद्धानन्द पार्कमें कल तुम लोगोंकी सभा होनेवाली है न ?"

"हाँ।"

"तुम नहीं जाओगे ?"

"जानेकी बात थी। लेकिन अब जाना नहीं होगा।"

"क्यों ?"

"तुम्हें कहके क्या होगा ?"

"लोग डरपोक कहकर निन्दा करेंगे तुम्हारी।"

"जो लोग मुझे पसन्द नहीं करते वे तो निन्दा करेंगे ही।"

"तो सुनो मेरी बात, मैं तुम्हें मुक्ति दे दूंगी। सभामें तुम्हें जाना ही होगा।"

"और-भी जरा साफ-साफ कहो।"

"मैं भी जाऊंगी, सभाका झंडा हाथमें लिये हुए।"

"समझ गया।"

"पुलिस बाधा दे उसे माननेको राजी हूं, पर तुम बाधा दोगे तो मैं नहीं मानूँगी।"

"अच्छी बात है, मैं नहीं रोकूँगा।"

"बात पक्की रही ?"

"रही ।"

"हम दोनों एकसाथ चलेंगे शामको पाँच बजे ।"

"हाँ चलेंगे, पर वे दुर्जन लोग बादमें हम दोनोंको एकसाथ नहीं रहने देंगे ।"

इतनेमें आ गया आदित्य । सरलाने पूछा—"यह क्या, अभी तुरत चले आये जो ?"

"दो-एक बात कहते-कहते ही नीरू थकके सो गई ; मैं भी आहिस्तेसे चला आया ।"

रमेनने कहा—"मुझे काम है, मैं चल दिया ।"

सरलाने हँसते हुए कहा—"घर ठीक कर रखना, भूलना नहीं ।"

"कोई डरकी बात नहीं । जानी हुई जगह है ।"—कहकर रमेन चला गया ।

८

सरला बैठी थी । उठके खड़ी हो गई ; बोली—"जो बातें मुझसे नहीं कहनेकी हैं वे मुझसे मत कहो आज, तुम्हारे पैरों पड़ती हूं ।"

"कुछ भी नहीं कहूंगा, डरो मत ।"

"अच्छा, तो मैं ही कुछ कहना चाहती हूं, सुनो तुम । बताओ, मेरी बात रखोगे ?"

"न-रखने लायक न हुई तो जरूर रखूँगा, तुम तो जानती हो ।"

"इतना तो समझ ही लिया है कि मेरे पास बगैर रहे बिलकुल ही काम नहीं चलनेका । इस समय जीजीकी सेवा कर सकती

तो खुश होती, पर मेरे भाग्यमें वह कहाँ बदी है ! मुझे गैरहाजिर रहना ही पड़ेगा। जरा ठहरो, बातको पूरी कर लेने दो। सुन तो लिया ही है तुमने, डाक्टरोंकी राय है, जीजी अब ज्यादा दिनकी नहीं हैं। इस बीचमें उनके मनका काँटा तुम्हें उखाड़ फेंकना ही चाहिए। इन दिनोंमें मेरी छाया तुम हरगिज न पड़ने दो उनकी जिन्दगीपर।"

"मेरे मनसे आकर अपने-आप ही छाया पड़े तो मैं क्या कर सकता हूं ?"

"नहीं नहीं, अपने बारेमें ऐसी अश्रद्धाकी बात मत कहो। साधारण भारतीय पुरुषकी तरह भीगी मिट्टीका पिलपिला मन है क्या तुम्हारा ? हरगिज नहीं, मैं तुम्हें जानती हूं।"

फिर आदित्यका हाथ पकड़कर बोली—"मेरी तरफसे यह व्रत तुम ले लो। जीजीके जीवनान्तके समय अपने अन्तके दिन दाक्षिण्यसे भर दो। बिलकुल ही भुला दो यह बात कि मैं आई थी उनके सौभाग्यका मंगल-घट तोड़नेके लिए।"

आदित्य चुपचाप खड़ा रहा।

"दो, वचन दो।"

"दूंगा, लेकिन तुम्हें भी एक वचन देना होगा। बोलो, दोगी ?"

"तुम्हारे साथ मेरा फर्क यह है कि मैं अगर तुमसे प्रतिज्ञा कराऊँ तो वह होगी साध्य, मगर तुम अगर कराओगे तो वह शायद असम्भव हो।"

"नहीं, असम्भव नहीं होगा।"

"अच्छा कहो।"

"जो बात मन-ही-मन कहता रहता हूं वह बात तुम्हारे आगे मुँहसे कहनेमें दोष नहीं। तुम जो कुछ कह रही हो उसे सुनूँगा और बगैर त्रुटिके उसका पालन भी कर सकूंगा अगर निश्चित जान सकूं कि एक दिन तुम पूरी कर दोगी मेरी सारी शून्यता। क्यों, चुप क्यों रह गई ?"

"जानती जो नहीं मैं कि प्रतिज्ञा पालनेमें कब क्या विघ्न आ सकता है।"

"विघ्न तुम्हारे भीतर है क्या, पहले यह बताओ ?"

"क्यों मुझे दुःख देते हो। तुम क्या नहीं जानते कि ऐसी बात भी होती है जिसे भाषामें कहा जाय तो उसका उजाला ही बुझ जाता है ?"

"अच्छा, सुन ली तुम्हारी बात, सुनकर ही जा रहा हूं अपने कामसे।"

"अब मुड़कर नहीं देखोगे ?"

"नहीं, लेकिन अव्यक्त प्रतिज्ञाकी मुहर लगा देनेकी इच्छा होती है तुम्हारे मुँहपर।"

"जो सहज है, स्वाभाविक है, उसपर जोर न लगाया करो। अभी रहने दो।"

"अच्छा, तो एक बात पूछता हूं तुमसे, अब क्या करोगी, कहाँ जाओगी ?"

"इसका भार ले लिया है रमेन भाई सा'बने।"

"रमेन तुम्हें आश्रय देगा ? उस अभागेके पास चूल्हा-चौका कुछ है भी ?"

"इसकी फिकर न करो। पक्का आश्रय है। अपनी जायदाद नहीं, फिर भी रुकावट न आयेगी।"

"मुझे बता तो दोगी?"

"जरूर। पर इस बीचमें मुझे देखनेके लिए तुम जरा भी चञ्चल नहीं हो सकोगे इतना वचन दो।"

"तुम्हारा मन तो उतावला नहीं होगा न?"

"अगर हो तो अन्तर्यामीके सिवा और कोई नहीं जान पायेगा।"

"अच्छी बात है। लेकिन जाते समय भिक्षाका पात्र क्या बिलकुल ही रीता रखकर विदा हो जाओगी?"

पुरुषकी आँखें भर आईं।

सरलाने पास आकर चुपकेसे अपना मुँह ऊपर कर दिया।

६

"रोशनी!"

"क्या बिटिया?"

"कल सवेरेसे सरला नहीं दिखाई दे रही है?"

"तुम्हें नहीं मालूम, सरकार बहादुरने उन्हें गिरफ्तार करके पुलीपुलाव चालान कर दिया है?"

"क्यों, क्या हुआ था?"

"दरवानके साथ खड़जन्त्र करके वो बड़े-लाटकी मेम साबके घरमें घुस गई थी।"

"क्यों?"

"खास महारानीकी मुहर जिस बकसमें रहती है उसे चुरानेके लिए। हिम्मत तो देखो तनिक-सी लड़कीकी!"

"इससे फायदा?"

"लो, फायदा भी बताना पड़ेगा! मुहर जहाँ हाथ पड़ी कि सब आ गया हाथमें। फिर तो लाट सा'बको भी फाँसीपर चढ़ा सकती थी। उसी मुहरके जोरसे तो राज चलता है सरकारका।"

"और लालाजी कहाँ हैं?"

"उनके साफेमें से सेंधका औजार निकला था, सो उनका भी चालान हो गया। पचास साल तक पत्थर तोड़ना पड़ेगा जेलमें। अच्छा बिटिया, एक बात पूछती हूं मैं, घरसे जाते वक्त सरला बहनजी मुझे अपनी केशरिया रंगकी बहुत कीमती साड़ी दे गई हैं। बोलीं, अपनी पतोहूको दे देना। मेरी तो आँखें भर आईं। मैंने तो उन्हें कम नहीं सताया। मैं अगर साड़ी अपने पास रख दूं तो सरकार मुझे तो नहीं पकड़ लेगी?"

"तुझे कोई डर नहीं। लेकिन जल्दी जा, बाहरवाले कमरेमें अखबार पड़ा होगा, उठा तो ला।"

अखबार पढ़ा। आश्चर्य है आदित्यने उसे इतनी बड़ी खबर भी नहीं सुनाई। 'क्या अश्रद्धासे? जेल जाकर जीत गई वो लड़की? मैं क्या नहीं जा सकती थी अगर तबीयत मेरी ठीक होती? हँसते-हँसते मैं फाँसीपर झूल सकती थी।'

"रोशनी, देखी तैंने अपनी बहनजीकी करतूत! शरीफ-घरकी लड़की होकर खुले-बाजार दुनिया-भरके मरदोंके सामनेसे—"

आया बोल उठी—"मेरा तो जिउ काँप उठता है, चोर-डाकूसे भी बढ़ गई। छिःछिःछिः!"

"सब बातमें टाँग अड़ाती है, दिखाती है, मैं बड़ी-भारी वीराङ्गना हूं! बेहयापनकी हद हो गई, बगीचेसे लेकर जेलके फाटक तक! मरते-मरते भी घमंड नहीं गया, ऐं?"

आयाको केशरिया रंगकी साड़ीका खयाल आ गया; उसने कहा—"लेकिन बिटिया, बहनजीका मन बड़ा ऊँचा था, किसीको कुछ देती थीं तो जी खोलके दे डालती थीं।"

इस बातने नीरजाके दिलको चोट पहुंचाई। मानो उसने अचानक जागकर कहा—"ठीक कहती है तू रोशनी, ठीक कहती है। मैं तो भूल ही गई थी। तबीयत खराब होती है तो फिर मन भी खराब हो जाता है। पहलेसे मैं कितनी ओछी हो गई हूं। छिःछिः, अपनेको मारनेको जी चाहता है। सरला सच्ची लड़की है, झूठ नहीं जानती। ऐसी लड़की बहुत कम ही मिलेंगी। मुझसे वह बहुत अच्छी थी। जल्दीसे तू जरा गणेश गुमाश्तेको बुला ला।"

आया चली गई। नीरजा कागज पेन्सिल उठाकर चिट्ठी लिखने बैठी। गणेश आया। उससे बोली—"यह चिट्ठी पहुंचा सकोगे जेलमें, सरला बहनजीके पास?"

गणेशको अपने तईं कृतित्वका अभिमान था। उसने कहा—"जरूर। कुछ खर्च करना पड़ेगा। लेकिन क्या लिखा है, जरा सुना दीजिये; क्योंकि पुलिसके मार्फत जायगी न चिट्ठी!"

नीरजाने पढ़ सुनाया—"धन्य है तुम्हारी महानता। अबकी

बार जब तुम जेलसे वापस आओगी तो देखोगी तुम्हारे रास्तेके साथ मेरा रास्ता भी मिल गया है।"

गणेशने कहा—"यह रास्तेकी जो बात लिखी है वह अच्छी नहीं मालूम होती। खैर, अपने वकील सा'बको दिखाकर ठीक करा लूँगा।"

गणेश चला गया। नीरजा मन-ही-मन रमेनको नमस्कार करके बोली—"लालाजी, तुम मेरे गुरु हो।"

१०

आदित्य एक प्यालेमें दवा लेकर कमरेमें आया।

नीरजाने कहा—"यह क्या ले आये ?"

आदित्यने कहा—"डाक्टर कह गया है एक-एक घंटे बाद दवा देनेके लिए।"

"दवा पिलानेके लिए मुहल्लेमें और-कोई आदमी नहीं मिला क्या ? इतनी ही फिक्रकी बात है तो दिनके लिए कोई नर्स ही रख लो।"

"तीमारदारीके बहाने अगर पास रहनेका मौका मिले तो उसे छोड़ूं क्यों ?"

"इससे अगर तुम मौका निकालकर बगीचेका काम करो तो मैं ज्यादा खुश होऊँगी। मैं खाटपर पड़ी हूं, और बगीचा दिन पर दिन बरबाद होता जा रहा है।"

"हो जाने दो। पहले तुम अच्छी हो जाओ, फिर पहलेकी तरह दोनों मिलकर काम करेंगे।"

"सरला चली गई है, तुम अकेले पड़ गये हो, काममें मन नहीं लगता होगा। पर उपाय क्या है? इसके मानी यह थोड़े ही हैं कि नुकसान होने दिया जाय।"

"नुकसानकी बात मैं नहीं सोचता, नीरू। बगीचेका काम करना मेरा रोजगार है यह बात तुम्हींने मुझे भुला रखी थी, इसीसे तब काममें सुख मिलता था। अब मन नहीं लगता।"

"इस तरह अफसोस क्यों करते हो? खूब अच्छी तरह ही तो काम कर रहे थे उस दिन तक। कुछ दिनके लिए बाधा आती है तो इस तरह व्याकुल मत होओ।"

"पंखा खोल दूं क्या?"

"अब ज्यादा तीमारदारी न करो तुम, ये सब काम तुम्हारे नहीं हैं। इससे मुझे और भी ज्यादा परेशानी होती है। अगर किसी तरह समय काटना ही है तो तुम्हारा 'हार्टीकल्चरिस्ट क्लब' मौजूद है, वहाँ चले जाया करो।"

"तुम्हें जो रंगीन लिली पसन्द है, बगीचेमें बहुत ढूँढ़ देखी, मिली नहीं। अबकी बार अच्छी वर्षा नहीं होनेसे पौधोंमें तेज नहीं आया।"

"क्यों तुम झूठमूठको बक रहे हो। बल्कि तुम हरियाको बुला दो, मैं यहीं पड़ी-पड़ी बगीचेका काम देखूंगी। तुम क्या यह समझते हो कि मैंने खटिया ले ली है तो मेरा बगीचा भी खटिया ले लेगा? सुनो मेरी बात। सूखे हुए मौसमी फूलोंके पौधे उखाड़ फेंको और वहाँ नई जमीन तैयार कराओ। जीनेकी नीचेवाली

कोठरीमें सरसोंकी खलीका बोरा रखा है। हरियाके पास उसकी चाभी है।"

"रक्खी है क्या ? हरियाने तो कुछ भी नहीं कहा !"

"कहनेको उसका जी ही नहीं होता होगा। उसे क्या तुम लोगोंने कम हैरान किया है ? कच्चा साहब आकर प्रवीण क्लर्ककी जैसे कदर नहीं करता वैसा ही सलूक किया है तुमलोगोंने उससे।"

"हरिया मालीके बारेमें अगर मैं सच कहना चाहूं तो वह अप्रिय सत्य हो उठेगा।"

"अच्छा, मैं बिस्तरपर पड़ी-पड़ी ही उससे काम कराऊंगी, फिर देखना बगीचेका चेहरा ! बगीचेका नक्शा मुझे दे जाओ ; और मेरी डायरी भी। मैं नक्शेपर पेन्सिलसे निशान लगाके सब ठीक करा दूंगी।"

"मेरा उसमें कोई भी दखल नहीं रहेगा ?"

"नहीं। जानेके पहले अपनी फुलवाड़ीमें मैं पूरी-पूरी अपनी छाप मार जाऊँगी। कहे देती हूं मैं, रास्तेके किनारेवाले बॉटल-पामोंको मैं कतई नहीं रखूंगी ; वहाँ मैं झाऊकी कतार लगवाऊँगी। इस तरह सिर मत हिलाओ। जब पूरा तैयार हो जाय तब देखना ! तुमलोगोंकी 'लॉन' मैं नहीं रखूँगी, वहाँ संगमरमरकी वेदी बनवाऊँगी।"

"वेदी क्या उस जगह अच्छी लगेगी ? सस्ती नवाबी-सी दीखेगी।"

"तुम चुप रहो। बहुत अच्छी लगेगी। तुम कुछ भी नहीं कह सकते। कुछ दिनके लिए यह बगीचा होगा सिर्फ मेरा

अकेलीका, बिलकुल मेरा। उसके बाद अपनी उस बनी-बनाई फुलवाड़ीको मैं तुम्हें दे जाऊँगी। तुमने सोचा होगा कि मेरी ताकत खतम हो चुकी है। करके दिखा दूंगी मैं, क्या कर सकती हूं। और भी तीन माली चाहिए मुझे, और मजूर चाहिए पाँच-छै। याद है, एक दिन तुमने मुझसे कहा था, 'बगीचेकी सजावट करना तुमने नहीं सीखा।' सीखा है या नहीं, उसकी परीक्षा दे जाऊँगी। तुम्हें याद रखना ही होगा कि बगीचा मेरा है, मेरा ही है, मेरा स्वत्व इसमेंसे हरगिज नहीं जायगा।"

"अच्छी बात है, बहुत अच्छा होगा यह ;—तो मुझे क्या करना होगा ?"

"तुम अपनी दुकान सम्हाला करना ; वहाँ तुम्हारे आफिसका काम भी तो काफी है।"

"तो तुम्हें सम्हालनेका काम भी मेरे लिए निषिद्ध है ?"

"हाँ, हर वक्त पास रहने लायक वो अब मैं नहीं रही ; अब तो सिर्फ मैं और-किसीकी याद ही दिला सकती हूं, उससे फायदा क्या ?"

"अच्छी बात है। जब तुम मुझे सह सकोगी तभी आऊँगा। बुलवा लेना मुझे। आज तुम्हारे लिए मैं गन्धराजकी डाली लाया हूं, रखे जाता हूं तुम्हारे बिस्तरपर, मनमें कुछ खयाल न लाना।"

कहकर आदित्य उठ खड़ा हुआ।

नीरजाने उसका हाथ पकड़ लिया, कहा—"नहीं, जाओ नहीं, जरा बैठो।" और फूलदानीके एक फूलकी तरफ इशारा करके बोली—"जानते हो इस फूलका क्या नाम है ?"

आदित्य जानता है कि क्या जवाब देनेसे वह खुश होगी, इसलिए झूठ बोला—"नहीं, मैं नहीं जानता।"

"मैं जानती हूं। बताऊँ, 'पेट्यूनिया'। तुम समझते हो मैं कुछ नहीं जानती, मैं मूर्ख हूं?"

आदित्य हँस दिया, बोला—"सहधर्मिणी हो तुम, तुम अगर मूर्ख हुई तो कमसे कम मेरे समान तो हो ही। मूर्खताका कारोबार हम दोनोंके जीवनमें साझेमें चल रहा है।"

"वो कारोबार तो मेरे भाग्यमें अब रहा ही कहाँ है, सब खतम हो गया। वो जो दरवान बैठा वहाँ तम्बाकू मसल रहा है, कुछ दिन बाद वह रहेगा ड्योढ़ीपर, मैं नहीं रहूंगी। वह जो बैलगाड़ी कोयला पटककर रीती चली जा रही है, रोज-रोज चलती रहेगी वह इसी तरह; पर मेरी हृदय-तन्त्री नहीं चलेगी।" सहसा जोरसे आदित्यका हाथ मसककर कह उठी—"बिलकुल ही न रहूंगी? कुछ भी नहीं रहेगा मेरा? बताओ मुझे, तुमने तो बहुत-सी किताबें पढ़ी हैं, बताओ न मुझे, सचमुच सब बिला जायगा?"

जिनकी किताबें पढ़ी हैं उनकी विद्या जहाँ तक है वहीं तक मेरी है। जमके दरवाजेके पास जाकर थमी है, आगे नहीं बढ़ी।"

"बताओ न, तुम क्या समझते हो? जरा भी न रहेगा, नामो-निशान सब मिट जायगा? जरा भी नहीं?"

"अभी हैं यह अगर सम्भव हो, तो तब भी रहेंगे वह भी सम्भव है।"

"जरूर सम्भव है, जरूर है। यह बगीचा सम्भव होगा और

मैं होऊँगी असम्भव ! यह हो ही नहीं सकता, हरगिज नहीं। रोज शामको कौए इसी तरह झुटपुटेमें अपने-अपने घर लौटेंगे, इसी तरह झूमा करेंगी सुपारीके पेड़ोंकी डालियाँ ठीक मेरी आँखोंके सामने। उस दिन तुम याद रखना कि मैं हूं, मैं हूं, अपनी सारी फुलवाड़ीमें मैं हूं। याद रखना, हवा आकर जब तुम्हारे बालोंको छेड़ेगी तब समझ लेना उसमें मेरी उंगलियोंका स्पर्श है। बोलो, बोलो, याद रखोगे ?"

आदित्यको कहना पड़ा—"हाँ, याद रखूंगा।" लेकिन ऐसे स्वरमें न कह सका जिससे उसके विश्वासका सबूत मिलता।

नीरजा अस्थिर हो उठी, बोली—"तुम्हारे किताब लिखनेवाले बड़े-भारी पण्डित हैं न ! हुं: । क्या जानते हैं वे ? कुछ नहीं। मैं निश्चित रूपसे जानती हूं, मेरी बातपर विश्वास करो। मैं यहीं रहूंगी, तुम्हारे ही पास रहूंगी मैं, मुझे बिलकुल स्पष्ट दीख रहा है। मैं तुमसे कहे जाती हूं, वचन दिये जाती हूं, तुम्हारे बगीचेके पेड़-पौधे सबकी देख-भाल करती रहूंगी मैं ; जैसा पहले देखा करती थी उससे कहीं अच्छी तरह। और-किसीकी जरूरत नहीं होगी। किसीकी भी नहीं।"

बिस्तरपर पड़ी थी नीरजा ; उठके बैठ गई तकियेके सहारे, बोली—"मुझपर दया करो, दया करो। तुम्हें मैं इतना प्यार करती हूं उसका खयाल करके दया करो मुझपर, दया करो। इतने दिनोंसे, अब तक जैसे प्रेमसे अपनाया था तुमने मुझे, अब तक जितने लाड़-प्यारसे जगह दी थी अपने अन्दर, उस दिन भी तुम उसी तरह अपनाना, वैसे ही जगह देना अपने अन्दर। रुत-रुतमें

तुम्हारी फुलवाड़ीमें जो-जो फूल जैसे-जैसे खिलते जायँ, मन-ही-मन मेरे हाथमें दिया करना। अगर तुम निष्ठुर हो गये, तब तो फिर मैं यहाँ नहीं रह सकूँगी। मेरा बगीचा ही अगर छीन लोगे तो फिर हवा-हवामें मैं किस शून्यमें उड़ती फिरूंगी?" नीरजाकी आँखोंसे आँसू झरने लगे।

आदित्य मोंढ़ा छोड़कर बिस्तरपर बैठ गया। नीरजाका मुँह छातीसे लगाकर धीरे-धीरे उसके माथेपर हाथ फेरने लगा। बोला—"नीरू, शरीरको नष्ट मत करो।"

"जाने दो शरीरको। मैं अब और कुछ नहीं चाहती, मैं सिर्फ तुम्हें चाहती हूं इन सबको लेकर। मेरी बात सुनो, गुस्सा मत होओ मेरे ऊपर।" —कहते-कहते उसका गला रुक आया। जरा शान्त होनेके बाद बोली—"सरलाके प्रति अन्याय किया है मैंने। तुम्हारे पाँवों पड़ती हूं, अब अन्याय नहीं करूंगी। जो हो गया है, उसके लिए तुम मुझे माफ करो। लेकिन मुझे प्यार करो, प्यार करो तुम मुझे। तुम जो चाहोगे, जो कहोगे, सब करूंगी मैं।"

आदित्यने कहा—"शरीरके साथ मन भी तुम्हारा बीमार था नीरू, इसीसे अपनेको व्यर्थमें सताया है तुमने।"

"मेरी बात सुनो। कल रातसे मैंने बार-बार प्रण किया है कि अबकी बार मिलते ही सरलाको मैं निर्मल मनसे छातीसे लगा लूँगी, अपनी बहनकी तरह। तुम मुझे अपनी इस आखिरी प्रतिज्ञा पालनेमें मदद करो। बोलो, मैं तुम्हारे प्यारसे वंचित न रहूंगी; तब फिर मैं सबको अपना प्यार दे जा सकूँगी।"

इस बातका कोई जवाब न देकर आदित्य बार-बार उसका मुँह चूमने लगा, माथा चूमने लगा। नीरजाकी आँखें मुँद आईं। थोड़ी देर बाद आँख खोलकर उसने पूछा—"सरला कब जेलसे छूटेगी, मैं दिन गिन रही हूं? डर लगता है, कहीं उसके पहले ही मैं न मर जाऊँ। कहीं ऐसा न हो कि कह ही न जा सकूं कि मेरा मन अब बिलकुल साफ हो गया है। अब जला दो बत्ती। मुझे पढ़कर सुनाओ अक्षय बड़ालकी 'एषा'।" और तकियाके नीचेसे किताब निकालकर उसने आदित्यके हाथमें दे दी। आदित्य पढ़के सुनाने लगा।

सुनते-सुनते जरा आँख लगी ही थी कि इतनेमें आया आ पहुंची, बोली—"चिट्ठी।"

नींद उचट गई नीरजाकी, चौंक उठी वह। जोरसे धड़क उठी उसकी छाती। किसी मित्रने आदित्यको खबर दी है कि जेलमें जगहकी कमी है, इसलिए कुछ ऐसे कैदियोंको छोड़ दिया जायगा जिनकी मियाद अभी खतम नहीं हुई है, उनमें सरला भी एक है। आदित्यका मन उछल उठा। ऊपरसे जी-जानसे कोशिश की उसने अपनी खुशीको दबानेकी। नीरजाने पूछा—"किसकी चिट्ठी है, क्या लिखा है?"

पढ़के सुनानेमें कहीं गलेकी आवाज काँप न उठे, इस डरसे उसने चिट्ठी ही दे दी नीरजाके हाथमें। नीरजाने आदित्यके मुँहकी तरफ देखा। मुँहसे कोई बात तो नहीं निकली, पर उसकी जरूरत भी नहीं रही। नीरजाके मुँहसे भी कोई बात नहीं निकली। उसके बाद, कुछ जोर लगाकर ही बोली—"अब

तो कोई बात नहीं। आज ही छूट जायगी। तुरत ले आना उसे मेरे पास।"

"अरे अरे! क्या हो गया, नीरू! नर्स, डाक्टर हैं क्या?"

"हैं, बाहरवाले कमरेमें बैठे हैं।"

"अभी तुरत ले आओ। आ गये डाकृर! अभी-अभी बिलकुल ठीक थी, बात कर रही थी मजेमें; करते-करते बेहोश हो गई!"

डाक्टरने नाड़ी देखी; और चुप हो रहे।

कुछ देर बाद रोगीने आँखें खोलीं, कहने लगी—"डाक्टर, तुम्हें मुझे बचाना ही होगा। सरलाको बगैर देखे मैं नहीं जा सकती, उससे अच्छा नहीं होगा। आशीर्वाद देना है उसे। आखिरी आशीर्वाद।"

अब आँखें मुँद आईं। हाथकी मुट्ठियाँ कड़ी हो गईं, बोल उठी—"लालाजी, अपना वचन निभाऊंगी, जरूर निभाऊंगी, कंजूसकी तरह हरगिज न मरूंगी।"

बीच-बीचमें चेतना क्षीण हो आती, दुनिया धुँधली हो उठती उसके ज्ञानमें, और तब बुत-बुत करके बुतनेवाले दीआकी तरह जल-जल उठती उसकी जीवन-शिखा। पतिसे रह-रहकर पूछ उठती—"कब आयेगी सरला?"

रह-रहकर पुकार उठती—"रोशनी!"

आया जवाब देती—"क्या बिटिया?"

"लालाजीको बुला ला अभी तुरत।"—फिर अपने आप ही कह उठी—"क्या होगा मेरा, लालाजी! दूंगी दूंगी, दूंगी मैं अपना सब कुछ, सब-कुछ दे डालूंगी।"

रातके तब नौ बजे होंगे। मरीजके कमरेके एक कोनेमें मोम-बत्ती टिमटिमा रही है। हवामें चम्पा-चमेलीकी खुशबू भरी है। खुली हुई खिड़कीसे दिखाई दे रही है बगीचेके पेड़ोंकी जमी हुई कालिमा; और उसके ऊपर आकाशमें कालपुरुषके तारे। इस डरसे कि कहीं मरीजकी नींद न उचट जाय, सरलाको दरवाजेके पास खड़ी करके आदित्य धीरे-धीरे नीरजाके पलंगके पास आया।

देखा कि उसके ओठ हिल रहे हैं। मानो मन-ही-मन कुछ जप रही है। चेहरेपर बेहोशी और होश दोनोंकी ही छाया घूम फिर रही है, जिससे मुँह हो रहा है विह्वल-सा। कानके पास मुँह ले जाकर आदित्यने कहा—"सरला आ गई।"

जरा-सी आँख खोलकर सरलासे कहा—"तुम जाओ।" फिर पुकार उठी—"लालाजी !"

कहींसे कोई जवाब नहीं आया।

सरलाने भीतर आकर ज्यों ही उसके पाँव छुए कि बिजलीकी तरह उसकी सारी देह यकायक तड़क-सी उठी। पाँव अपने आप ही तेजीसे सरक गये। रुंधे हुए फूटे स्वरमें बोली—"नहीं दे सकी, नहीं दे सकी; मैं नहीं दे सकती, नहीं दे सकती !" कहते-कहते अस्वाभाविक ताकत आ गई उसमें। आँखोंकी पुतलियाँ फैलकर जलने लगीं। मसकके पकड़ लिया उसने सरलाका हाथ, कण्ठ हो गया तीक्ष्ण, बोल उठी—"नहीं नहीं, यहाँ तेरे लिए जगह नहीं डायन, यहाँ तेरे लिए जगह नहीं। मैं रहूंगी, रहूंगी, रहूंगी !"

सहसा ढीली शेमिज़ पहनी-हुई पाण्डुवर्ण शीर्ण मूर्ति बिस्तर छोड़कर उठ खड़ी हुई, बिलकुल सतर खड़ी होकर विचित्र स्वरमें बोल उठी—"भाग, भाग ! भाग अभी ! नहीं तो छिन-छिनमें सूल चुभोती रहूंगी तेरी छातीमें, चूसके सुखा दूंगी तेरा खून !" और दूसरे ही क्षण धड़ाम-से गिर पड़ी जमीनपर ।

गलेकी आवाज सुनकर आदित्य दौड़ा आया भीतर ; प्राणोंकी सारी शक्ति लगाकर कहे-गये नीरजाके आखिरी शब्द तब स्तब्ध हो चुके थे ।

सम्पत्ति-समर्पण

१

वृन्दावन बहुत गुस्सेमें आकर बापसे बोला—"लो, मैं अभी चला।"

बाप यज्ञनाथ कुण्डूने कहा—"नालायक, कृतघ्न कहींका, बचपनसे अब तक जो तुझे खिला-पिलाकर इतना बड़ा किया है उस कर्जको तो पहले चुका दे, तब तेजी दिखाना !"

यज्ञनाथके घर जैसा खाने-पहननेका चलन था उसे देखते हुए तो यह नहीं कहा जा सकता कि खर्च ज्यादा हुआ होगा। प्राचीन कालमें साधु-महात्मा लोग खाने-पहननेके मदमें हदसे ज्यादा किफायतसारी करके जिन्दगी बसर करते थे; यज्ञनाथके रहन-सहनमें भी वही उच्चादर्श झलकता था। परन्तु सम्पूर्ण सिद्धि वे न प्राप्त कर सके थे; कुछ तो आधुनिक समाजके दोषसे और कुछ शरीर-रक्षा-सम्बन्धी प्रकृतिके अन्यायपूर्ण अनिवार्य नियमोंके दबावसे।

लड़का जब तक अविवाहित रहा तब तक तो सहता रहा; पर ब्याह होनेके बादसे ही खाने-पहननेके बारेमें पिताके अत्यन्त उच्च आदर्शके साथ पुत्रके आदर्शका मेल न बैठा। यह बात देखनेमें आई कि लड़केका आदर्श क्रमशः आध्यात्मिकतासे हटकर भौतिकताकी ओर बढ़ता जा रहा है। सरदी-गरमी और भूख-प्याससे सताये हुए पार्थिव समाजकी देखादेखी उसके कपड़ोंका नाप और भोजनकी तौल उत्तरोत्तर बढ़ने ही लगी।

इस बारेमें बाप-बेटोंमें अकसर झगड़ा होने लगा। अन्तमें, बृन्दावनकी स्त्रीकी कठिन बीमारीमें वैद्यराजने एक कीमती दवा बताई, और इसीपर यज्ञनाथने उन्हें अनभिज्ञ करार देकर उसी वक्त विदा कर दिया। बृन्दावनने पहले तो हाथ-पैर जोड़े-जाड़े, फिर तनातनी भी की, पर कुछ नतीजा न निकला। स्त्रीका देहान्त हो जानेपर बापको उसने 'हत्यारा' कहकर गाली दी।

बापने कहा—"दवा खाकर क्या कोई मरता नहीं? कीमती दवा खाकर ही अगर सब बच जाते, तो फिर राजा-बादशाह वगैरह क्यों मरते! जैसे तेरी मा मरी है, तेरी दादी मरी है, तेरी स्त्री क्या उनसे ज्यादा धूमधामके साथ मरती?"

वास्तवमें अगर बृन्दावन शोकमें अन्धा न होकर स्थिरचित्तसे विचारकर देखता, तो इस बातसे उसे बहुत-कुछ तसल्ली मिलती। उसकी मा और दादी किसीने भी मरते वक्त दवा नहीं खाई। इस घरकी ऐसी ही सनातन प्रथा है, लेकिन आधुनिक लोग पुराने नियमसे मरना भी नहीं चाहते! यह उस जमानेकी बात है जब कि अंग्रेजोंका यहाँ आना शुरू ही हुआ था। लेकिन उस समय, तबके पुराने जमानेके आदमी तबके नये जमानेके आदमियोंका हाल-चाल देखकर दंग रह जाया करते और ज्यादा तम्बाकू पिया करते थे।

कुछ भी हो, हुआ यह कि तबके नई रोशनीके बृन्दावनने तबके पुरानी रोशनीके यज्ञनाथसे झगड़ा कर डाला; और कहा—"लो, मैं अभी चला।"

बापने उसे उसी वक्त चले जानेकी इजाजत देकर सबके सामने

कहा—"बृन्दावनको अगर मैं एक पाई भी दूं, तो वह गो-रक्त गिरानेके बराबर होगा।" बृन्दावनने भी सबके सामने कह दिया—"मैं भी अगर तुम्हारी एक दमड़ी कभी छुऊँ, तो मुझे माताकी हत्याका पाप लगे।" और इसके बाद बाप-बेटोंमें विच्छेद हो गया।

बहुत दिनोंकी शान्तिके बाद ऐसी एक छोटी-मोटी क्रान्तिसे गाँवके लोगोंको जरा-कुछ खुशी ही हुई। खासकर बृन्दावनके अपने उत्तराधिकारसे वञ्चित होनेके बाद, सभी-कोई अपनी-अपनी शक्तिके अनुसार यज्ञनाथके मौजूदा दुःसह पुत्र-वियोगके दुःखको दूर करनेकी कोशिश करने लगे। सभी-कोई कहने लगे—'मामूली सी एक बहूके लिए बापके साथ इस तरह लड़ना और घर त्याग देना सिर्फ इसी जमानेमें सम्भव है।'

उन लोगोंने एक खास युक्ति भी दी; कहने लगे—'एक बहूके जानेपर दूसरी बहू तो झट मिल सकती है, पर बाप तो दूसरा सिर दे मारनेपर भी नहीं मिल सकता।' इसमें शक नहीं कि दलील बहुत ही पुख्ता है, पर हमारा तो ऐसा विश्वास है कि बृन्दावन जैसा लड़का इस युक्तिको सुनकर अनुताप न करता, बल्कि कुछ निश्चिन्त ही होता।

बृन्दावनके जाते वक्त पिताको अधिक क्षोभ हुआ हो, सो भी नहीं। उसके चले जानेसे एक तो खर्च घटा, दूसरे एक बड़ा-भारी डर भी जाता रहा। नहीं तो हर वक्त यह चिन्ता बनी रहती थी कि न-जाने कब किस घड़ी वह जहर देकर उन्हें मार डाले! एक तो वैसे ही थोड़ा खाते थे, उसके साथ जहरकी

चिन्ता ! बहूकी मौतके बाद यह चिन्ता कुछ घटी थी और अब लड़केके चले जानेसे तो बिलकुल ही जाती रही।

सिर्फ एक बिथा उनके मनमें खटक रही थी। उनका चार सालका एक पोता था गोकुलचन्द, उसे भी बृन्दाबन साथ लेता गया है। गोकुलके खाने-पहननेका खर्च औरोंकी अपेक्षा कुछ कम था और इसलिए उसपर यज्ञनाथका स्नेह बहुत-कुछ निष्कंटक था। फिर भी बृन्दावन जब उसे लेकर चला गया तो उसके अकृत्रिम शोकमें भी यज्ञनाथके मनमें क्षण-भरके लिए जमा-खर्चका एक हिसाब जाग उठा; वह यह कि दोनोंके चले जानेसे महीनेमें कितना खर्च घटा, उससे सालमें कितनी बचत हुई और वह कितने रुपयोंकी ब्याज हुई।

मगर फिर भी, सूने घरमें गोकुलचन्दका ऊधम न होनेसे उनके लिए घरमें टिकना मुश्किल हो गया। आजकल यज्ञनाथको ऐसी मुसीबतका सामना करना पड़ रहा है कि पूजाके वक्त कोई विघ्न नहीं डालता, खाते वक्त कोई छीनकर नहीं खाता और हिसाब लिखते वक्त दावात लेकर भाग जाय ऐसा भी कोई नहीं रहा। बिना उपद्रवके शान्तिसे खाने-पीने और सोने-उठनेमें उनका चित्त व्याकुल होने लगा।

उन्हें ऐसा लगने लगा जैसे मरनेके बाद ही शायद लोग ऐसी उत्पातहीन शून्यता प्राप्त करते हैं; खासकर बिछौनेपर उनके पोतेके किये-हुए छेद और बैठनेकी चटाईपर उक्त चित्रकार द्वारा अङ्कित स्याहीके चिह्नोंको देख-देखकर उनका हृदय और-भी अशान्त हो उठता। उस अमिताचारी बालकने दो ही बरसकी उमरमें बाबाकी

पहननेकी धोती बिलकुल फाड़-चीर डालनेकी वजहसे एक दिन बाबाकी बहुत-कुछ डाट-डपट सही थी; पर अब उन्होंने एक दिन जब सोते वक्त अपने कमरेमें उस शत-ग्रन्थि-विशिष्ट मलिन परित्यक्त चीरखण्डको देखा, तो उनकी आँखें डबडबा आईं, उसे दिआकी बत्ती या पलीता बनानेमें, या अन्य किसी घर-गृहस्थीके काममें न लाकर जतनसे सन्दूकमें रख दिया; और मन-ही-मन प्रतिज्ञा की कि गोकुल अगर वापस आ जाय, और यहाँ तक कि सालमें अगर एक धोती भी फाड़-चीर डाले, तो भी उसे वे डाटें-डपटेंगे नहीं।

पर गोकुल न लौटा; और यज्ञनाथकी उमर मानो पहलेसे और भी तेजीसे आगे दौड़ने लगी। सूना घर उन्हें दिनों-दिन और भी सूना मालूम होने लगा।

यज्ञनाथसे अब घरमें टिका नहीं जाता। दोपहरको जब कि शरीफ लोग खा-पीकर सुखकी नींद लेते हैं, यज्ञनाथ तब हुक्का हाथमें लिये मुहल्ले-मुहल्लेमें घूमा करते हैं। उनके इस नीरव मध्याह्न-भ्रमणके समय रास्तेके लड़के खेल छोड़कर निरापद स्थान को भाग जाते और उनकी मितव्ययिताके सम्बन्धमें स्थानीय कवि रचित विविध-छन्दोबद्ध रचनाएँ खूब ऊँचे स्वरमें गाया करते, ताकि वे सुन लें। कहीं दिन-भर फाके ही न गुजारना पड़े, इस डरसे लोग उनका पितृदत्त नाम तक उच्चारण नहीं करते। लोगोंने अपनी तबीयतके माफिक उनके तरह-तरहके नाम रख लिये हैं। बूढ़े उन्हें 'यज्ञनाश' कहा करते हैं; पर छोकरे क्यों उन्हें 'चमगादड़' कहकर पुकारा करते हैं, इसका कुछ स्पष्ट कारण नहीं मालूम पड़ता।

२

एक दिन दोपहरको, इसी तरह, आम्रतरुकी छायाके नीचे शीतल ग्राम्य-पथपर यज्ञनाथ घूम रहे थे, देखा कि एक अपरचित बालक गाँवके लड़कोंका सरदार बनकर उपद्रवका एक बिलकुल नया ही पन्थ दिखला रहा है। और-और लड़के उसके इस चरित्र-बल और कल्पनाकी नवीनतापर मुग्ध होकर तन-मनसे उसके वशमें हो गये हैं।

और-सब लड़के जैसे बुड्ढेको देखकर खेल छोड़कर भाग जाया करते थे, इसने वैसा न करके झटसे बुड्ढेके पास जाकर उनके ऊपर अपनी चद्दर झाड़ दी; चादरमेंसे एक बन्धन-मुक्त छिपकली निकलकर बुड्ढेके ऊपर गिरी और तुरत पेड़ोंकी तरफ भाग गई। इस आकस्मिक त्राससे बुड्ढेके रोंगटे खड़े हो गये। लड़कोंमें एक बड़ा-भारी खुशीका शोर मच गया। और-कुछ दूर आगे जाते-न-जाते यज्ञनाथके कन्धेपरसे अँगौछा ही गायब हो गया, देखा तो उस अपरिचित बालकके सिरपर वह पगड़ीका काम दे रहा है!

इस अनजान मानव-पुत्रके द्वारा इस तरहका नये ढंगका शिष्टाचार पाकर यज्ञनाथ बहुत ही खुश हुए। किसी भी बच्चेसे ऐसा असंकोच अपनापन उन्होंने बहुत दिनोंसे नहीं पाया था। बहुत बार बुला-बुलाकर और तरह-तरहके लालच देकर यज्ञनाथने उसे कुछ-कुछ वशमें कर लिया।

पूछा—"तेरा नाम क्या है?"

उसने कहा—"नेताईचन्द पाल।"

"कहाँ रहता है ?"

"नहीं बताऊँगा।"

"तेरे बापका नाम क्या है ?"

"नहीं बताऊँगा।"

"क्यों नहीं बतायेगा ?"

"मैं घरसे भाग आया हूं।"

"क्यों ?"

"बापूजी मुझे पाठशालामें भरती कर रहे थे।"

यज्ञनाथने उसी समय समझ लिया कि ऐसे लड़केको पाठशालामें भरती करना बिलकुल फजूलका खर्च बढ़ाना है; और बापकी बेवकूफीका ही परिचायक है।

यज्ञनाथने कहा—"हमारे घर चलकर रहेगा ?"

लड़केने जरा भी आपत्ति न की; और उनके घर जाकर उसने ऐसी निःसंकोचताके साथ आश्रय लिया जैसे वह कोई सड़कके किनारेके पेड़की छाया हो।

सिर्फ इतना ही नहीं, खाने-पहननेके सम्बन्धमें ऐसी दृढ़ताके साथ मनमाना हुक्म चलाने लगा कि जैसे उसने पहलेसे ही उसके पूरे दाम चुका रखे हों; और इसी विषयको लेकर कभी-कभी घर-मालिकसे उसकी तकरार भी हो जाया करती। अपने लड़के को हरा देना आसान है, पर दूसरेके लड़केके आगे यज्ञनाथको खुद ही हार माननी पड़ी।

३

यज्ञनाथके घर निताईका ऐसा कल्पनातीत लाड़-प्यार देखकर गाँवके लोग ताज्जुब करने लगे। लोग समझने लग गये कि 'बुड्ढा अब ज्यादा जीयेगा नहीं' और 'मरते वक्त इस परदेशी छोकरेको सब धन-दौलत दे जायगा।'

यहाँ तक कि उस लड़केसे सभी-कोई ईर्ष्या करने लगे और उसका अनिष्ट करनेको तैयार हो गये। पर वृद्ध यज्ञनाथ उसे हमेशा छातीकी पसलियोंकी तरह छिपाये रहते, अपनेसे अलग होने ही नहीं देते।

और लड़का कभी-कभी चले जानेकी धमकी दिया करता। यज्ञनाथ उसे लालच देते, 'ना बेटा, तुझे मैं अपनी तमाम दौलत दे जाऊँगा।' लड़केकी उमर तो थोड़ी थी, पर इस बातके मानी और कीमत वह पूरी तरहसे समझ सकता था।

तब गाँवके लोग उस लड़केके बापकी तलाश करने लगे। कहने लगे—हाय, इसके मा-बापको न-जाने कितना दुःख हो रहा होगा। लड़का भी तो कम शैतान नहीं, घर जानेका नाम भी नहीं लेता।' यह कहकर लड़केको न-कहनी भाषामें गालियाँ देते। उसमें इतनी ज्यादा चरपराहट होती कि उसमें न्याय-बुद्धिकी उत्तेजनाकी बनिस्बत स्वार्थकी जलन ही ज्यादा पाई जाती।

बुड्ढेने एक दिन एक राहगीरसे सुना कि 'दामोदर नामका एक आदमी अपने लापता लड़केकी खोज करता फिरता है, और वह इधर ही को आ रहा है।'

निताई इस समाचारके सुनते ही घबरा उठा ; और अपनी भावी जायदादको छोड़-छाड़कर भागनेको तैयार हो गया।

यज्ञनाथ निताईको बार-बार समझाने लगे—"तुझे मैं ऐसी जगह छिपा रखूँगा कि कोई ढूँढ ही नहीं पायेगा, गाँवके लोग भी नहीं।"

बालक बड़े कुतूहलमें पड़ गया ; बोला—"कहाँ, दिखा दो न जरा ?"

यज्ञनाथने कहा—"अभी दिखानेसे सब भेद खुल जायगा। रातको दिखाऊँगा।"

निताई इस नये रहस्यके आविष्कारकी आशासे फूला न समाया। उसने मन-ही-मन तय कर लिया कि 'बाप जब अपना-सा मुँह लिये लौट जायगा तब लड़कोंसे होड़ बदकर वहाँ दुबका-चोरी खेलेंगे। कोई ढूँढ ही न पायेगा, बड़ा मजा आयेगा ! बापूजी आकर तमाम गाँव छान डालेंगे, फिर भी उसे न पायेंगे, यह भी खूब मजेकी बात होगी !'

दोपहरको यज्ञनाथ निताईको घरमें बन्द करके कहीं बाहर चले गये। घर वापस आनेपर उसने सवालपर सवाल करके उनके नाकों दम कर दिया। शाम होते-न-होते बोला—"चलो न !"

यज्ञनाथने कहा—"अभी रात नहीं हुई।"

निताईने फिर कहा—"रात हो गई बाबा, चलो।"

"अभी मुहल्लेके लोग सोये नहीं हैं।"

निताईने क्षण-भर ठहरकर फिर कहा—"अब सो गये, चलो।"

रात बढ़ने लगी। निद्रातुर निताई बड़ी मुश्किलसे नींदको रोकनेकी कोशिश करता रहा; मगर फिर भी बैठा-बैठा औंघने लगा। आधी रातको यज्ञनाथ निताईका हाथ पकड़कर सोते हुए गाँवके अँधेरे रास्तेसे बाहर निकले। कहीं भी किसी तरहका शोरगुल नहीं था, सुनसान रात थी, सिर्फ बीच-बीचमें कुत्तोंका भौंकना सुन पड़ता था। कभी-कभी निशाचर पक्षी पैरोंकी आहट सुनकर जंगलकी ओर उड़ जाते थे। निताईको डर लगने लगा; उसने यज्ञनाथका हाथ जोरोंसे पकड़ लिया।

लम्बा रास्ता तय करके अन्तमें दोनों एक जंगलके अन्दर देवहीन खंडहर मन्दिरमें जा पहुंचे। निताईने कुछ उदास होकर कहा—"यहाँ?"

जैसा उसने सोचा था वैसा तो नहीं हुआ! इसमें तो कोई खास रहस्य नहीं मालूम होता। घर छोड़नेके बाद ऐसे पुराने खंडहर मन्दिरमें उसे कितनी ही रातें बितानी पड़ी हैं। यह जगह आँखमिचौनी खेलनेके लिए बुरी नहीं, पर यहाँसे किसीको ढूंढ़ निकालना कोई बड़ी बात नहीं।

यज्ञनाथने मन्दिरके फर्शके बीचका एक पत्थर उठाया। लड़केने देखा कि नीचे एक कोठा-सा है और वहाँ एक दीपक जल रहा है। देखकर उसे बहुत ही ताज्जुब और कुतूहल हुआ; साथ ही डर भी लगने लगा। एक नसैनीके सहारे यज्ञनाथ नीचे उतर गये। उनके पीछे-पीछे निताई भी डरते-डरते उतरा।

नीचे जाकर देखा कि चारों तरफ पीतलके कलसे रखे हैं, बीचमें एक आसन है; और उसके सामने सिन्दूर, चन्दन, फूलोंकी

माला आदि पूजाकी चीजें नीचे रखी हैं। निताईने कुतूहल दूर करनेके लिए आगे बढ़कर देखा कि कलसोंमें सिर्फ रुपये और मोहरें भरी हुई हैं !

यज्ञनाथने कहा—"निताई, मैंने कहा था न, मैं अपनी दौलत तुम्हींको दे जाऊँगा। मेरे पास ज्यादा कुछ नहीं है, सिर्फ ये ही थोड़ेसे घड़े मेरी कुल पूंजी है। आज ये सब मैं तुम्हें सौंप दूंगा।"

बच्चा मारे खुशीके उछल पड़ा ; बोला—"ये सब ! इसमें से एक भी तुम नहीं लोगे ?"

"अगर लूं तो मेरे हाथोंमें कोढ़ हो जाय। पर एक बात है। अगर मेरा पोता गोकुल, या उसका लड़का या पोता, या हमारे खानदानका कोई भी आ जाय, तो उसे ये सब रुपये तुम्हें लौटा देने पड़ेंगे।"

बालकने सोचा, बुड्ढा पागल हो गया है। उसी वक्त उसने शर्त मंजूर कर ली—"अच्छा।"

यज्ञनाथने कहा—"तो इस आसनपर बैठ जाओ।"

"क्यों ?"

"तुम्हारी पूजा होगी।"

"क्यों ?"

"ऐसा नियम है।"

लड़का आसनपर बैठ गया। यज्ञनाथने उसके माथेपर चंदन लगाया, सिन्दूरका टीका किया, गलेमें माला पहनाई और सामने बैठकर बड़बड़ाते हुए मन्त्र पढ़ने लगे।

देवता बनकर आसनपर बैठकर मन्त्र सुननेमें निताईको डर लगने लगा ; वह चिल्ला उठा—"बाबा !"

यज्ञनाथ कुछ जवाब न देकर मन्त्र पढ़ते ही गये।

अन्तमें, बड़ी मुश्किलसे एक-एक कलसेको घसीट-घसीटकर बालकके सामने रखते और उसे समर्पण करते गये ; प्रत्येक बार कहलाते गये—"मैं निताई पाल युधिष्ठिर कुंडूके पुत्र गदाधर कुंडू, तस्य पुत्र प्राणकृष्ण कुंडू, तस्य पुत्र परमानन्द कुंडू, तस्य पुत्र यज्ञनाथ कुंडू, तस्य पुत्र वृन्दावन कुंडू, तस्य पुत्र गोकुलचन्द कुंडूको अथवा उसके पुत्र पौत्र वा प्रपौत्रको या उसके वंशके न्यायतः उत्तराधिकारीको ये सारे रुपये सौंप दूंगा।"

इस तरह बार-बार एक ही बात दुहराते-दुहराते लड़का हतबुद्धि-सा हो गया। उसकी जीभ उत्तरोत्तर लड़खड़ाने लगी। जब तक यह अनुष्ठान समाप्त हुआ, तब तक दीपकके धुआँके मारे और दोनोंकी साँसोंकी दूषित हवासे वह छोटी-सी गुफा भापसे भर गई। बच्चेका तालू सूख गया, हाथ-पाँव जलने लगे और दम घुटनेकी नौबत आ गई।

दिआकी लौ धीमी पड़ गई ; और वह सहसा बुझ भी गया। अँधेरेमें बच्चेने महसूस किया कि यज्ञनाथ नसैनीके सहारे ऊपर चढ़ रहे हैं।

व्याकुल होकर वह पूछ उठा—"बाबा, कहाँ जाते हो ?"

यज्ञनाथने कहा—"मैं चला। तू यहीं रह, तुझे अब कोई भी न ढूंढ़ सकेगा। पर याद रखना, यज्ञनाथका पौत्र, वृन्दावनका पुत्र गोकुलचन्द !"

कहकर बुड्ढा ऊपर चढ़ आया और चटसे उसने नसैनी खींच ली।

लड़केका दम घुटने लगा; उसने बड़ी मुश्किलसे इतना कहा—"बाबा, मैं बापूके पास जाऊँगा।"

यज्ञनाथने उस छेदपर पत्थर ढक दिया और उसपर कान लगाकर सुना, निताई घुटते हुए कंठसे अन्तिम पुकार पुकार रहा था—"बापू, बापू!"

उसके बाद किसी चीजके गिरनेका धमाका हुआ, फिर कोई आवाज नहीं सुनाई दी। इस तरह यक्षके हाथमें धन सौंपकर यज्ञनाथ उस पत्थरके टुकड़ेको मिट्टीसे ढकने लगे। उसके ऊपर खंडहर मन्दिरकी ईंटोंका ढेर लगा दिया, उसपर घास जमाई और जंगलके छोटे-छोटे पौधे लगा दिये। रात करीब-करीब खतम हो चुकी थी; पर उनसे वह जगह छोड़ी न गई। रह रहकर बार-बार जमीनसे कान लगाकर सुनने लगे। मालूम होने लगा, मानो बहुत दूरसे, पृथ्वीके अतलस्पर्शसे रोने-बिलखनेकी आवाज उठ रही है। मालूम हुआ मानो रात्रिका आकाश सिर्फ उसी एक ही आवाजकी गूंजसे भरा जा रहा है, पृथ्वीके समस्त सोये हुए प्राणी मानो उस आवाजसे अपने-अपने बिस्तरेपर जाग कर बैठ गये हैं और कान लगाकर सुन रहे हैं।

बुड्ढा घबरा-घबराकर बार-बार मिट्टीपर मिट्टी डाल रहा था। मानो ऐसे ही वह किसी तरह पृथ्वीका मुँह बन्द कर देगा।

वह कौन बुला रहा है—"बापूजी!"

बुड्ढा मिट्टीपर लात जमाकर कहने लगा—"चुप रह। सब सुन लेंगे!"

फिर किसीने पुकारा—"बापूजी!"

देखा, दिन चढ़ आया है। बुड्ढा डरता हुआ मन्दिरसे निकलकर खेतोंमें पहुंचा।

वहां भी किसीने पुकारा—"बापूजी!" यज्ञनाथने चौंककर पीछेकी तरफ देखा तो, बृन्दावन!

बृन्दावनने कहा—"बापूजी, मैंने सुना है कि मेरा लड़का तुम्हारे यहाँ आ छिपा है, दो उसे।"

बुड्ढेने आँखें-मुँह विकृत करके बृन्दावनके ऊपर झुककर कहा—"तेरा लड़का?"

बृन्दावनने कहा—"गोकुल, अब उसका नाम है निताई पाल। मेरा नाम है दामोदर। आस-पास सब जगह तुम्हारी बहुत नामवरी है न! इसलिए हमलोगोंने शर्मके मारे नाम बदल दिया है। नहीं तो कोई हमलोगोंका नाम नहीं लेता।"

बुड्ढा दसों उंगलियोंसे आकाश टटोलता हुआ मानो हवाको जोरोंसे पकड़नेकी कोशिश करने लगा; पर कुछ हाथ न लगा, और धड़ामसे जमीनपर पछाड़ खाकर गिर पड़ा।

होश आनेपर यज्ञनाथ बृन्दावनको मन्दिरकी तरफ घसीट ले गये। बोले—"रोना सुनाई पड़ता है?"

बृन्दावनने कहा—"नहीं तो।"

"कान लगाकर सुन तो सही, 'बापू' कहकर कोई पुकार रहा है।"

भृन्दावनने कहा—"नहीं तो !"

बुड्ढा अब मानो बिलकुल निश्चिन्त हो गया।

उसके बाद अब वह सभीसे पूछता फिरता है—"रोना सुनाई देता है ?" पागलोंकी-सी बात सुनकर सब हँस देते हैं।

अन्तमें चार वर्षके बाद बुड्ढेके मरनेके दिन आये। जब आँखोंके सामनेसे दुनियाका दीआ बुझनेको हुआ और साँस रुकने लगी, तब विकारके वेगमें सहसा उठकर बैठ गया ; एक बार दोनों हाथोंसे चारों ओर टटोलते हुए कहा—"निताई, मेरी नसैनी किसने उठा ली ?"

यज्ञनाथको जब उस बिना हवाके अन्धकारमय महागह्वरसे निकलनेकी नसैनी न मिली तो वह धमसे बिछौनेपर गिर पड़ा ; और इस संसारके रात-दिनके आँख-मिचौनीके खेलमें जहाँ कोई किसीको ढूंढ़ नहीं सकता, वहींको चल दिया।

बाकायदा उपन्यास

१

'अल्ला-हो-अकबर' के नारेसे रणक्षेत्र गूंज उठा। एक तरफ तीन लाख यवन-सेना है, दूसरी ओर तीन हजार आर्य-सेना। बाढ़के बीचमें अकेले पीपलके पेड़के समान हिन्दू योद्धागण सारी रात और तमाम दिन युद्ध करते हुए अटल खड़े थे ; पर अब हार जानेके लक्षण दिखाई दे रहे हैं। और हारनेके साथ ही भारतकी विजय-पताका जमीनपर गिर पड़ेगी। आजके इस अस्ताचलवर्ती सूर्यके साथ भारतका गौरव-सूर्य हमेशाके लिए डूब जायगा।

"हर हर, बम् बम् !" पाठक, बता सकते हो कौन वह गर्वित युवक सिर्फ पैंतीस साथियोंको लेकर नंगी तलवार हाथमें लिये घोड़ेपर सवार होकर भारतकी अधिष्ठात्री देवीके हाथसे छोड़े गये दीप्त वज्रकी तरह दुश्मनोंकी फौजपर आ टूटा? बता सकते हो किसके प्रतापसे यह असंख्य यवन सेना प्रचंड तूफानसे घायल जंगली पेड़ोंकी तरह घबरा उठी है? किसके वज्रकंठसे उद्घोषित 'हर हर, बम् बम्' नादसे तीन लाख म्लेच्छ-कंठका 'अल्ला-हो अकबर' नारा आसमानका आसमानमें ही बिला गया? किसकी चमचमाती तलवारके सामने व्याघ्रसे आक्रान्त भेड़के बच्चेकी तरह शत्रु-सेना क्षण-भरमें दुम दबाकर भागने लगी? बता सकते हो उस दिनके आर्यस्थानके सूर्यदेव अपने सहस्ररक्तकरस्पर्शसे किसकी रक्ताक्त तलवारको आशीर्वाद देकर अस्ताचलपर विश्राम करने गये थे? बता सकते हो पाठक?

ये ही हैं वे ललितसिंह, कांचीके सेनापति, भारत-इतिहासके ध्रुवनक्षत्र!

२

आज कांची नगरमें क्यों इतना उत्सव है? पाठक, जानते हो राज-प्रासादकी चोटीपर विजय-पताका क्यों इतनी चंचल हो उठी है? सिर्फ हवाके जोरसे? नहीं नहीं, आनन्दकी उमंगसे। द्वार-द्वारपर कदली-वृक्ष और मंगल-घट रखे हुए हैं। घर-घरमें जयध्वनि हो रही है। मार्ग-मार्गपर दीपमालाएँ शोभित हैं। नगरके चारों तरफ, यहाँ तक कि प्राचीरोंपर भी लोगोंकी भीड़

जमी हुई है। नगरके लोग किसके लिए इतने उत्सुक होकर प्रतीक्षा कर रहे हैं? सहसा पुरुष-कंठकी जयध्वनि और कामिनी-कंठकी हर्षध्वनि दोनों एकसाथ मिलकर आकाशको भेदती हुई नक्षत्र-लोककी ओर उदित हुईं। आकाशके सारेके सारे तारे हवासे काँपती हुई दिओंकी लौकी तरह काँपने लगे।

वह जो प्रमत्त घोड़ेपर सवार वीरवर पुरद्वारसे प्रवेश कर रहा है, उसे पहचाना? हाँ, ये ही हैं हमारे पूर्वपरिचित ललितसिंह, कांचीके सेनापति। शत्रुओंका नाश करके अपने प्रभु कांची-राजके चरणोंमें शत्रु-रक्तसे रंगी हुई तलवार भेंट करने आये हैं, इसी लिए इतना उत्सव है।

पर इतनी जो जयध्वनि हो रही है, उस तरफ सेनापतिका जरा भी ध्यान नहीं; झरोखोंसे पुर-ललनाएँ इतनी जो पुष्पवृष्टि कर रही हैं, उधर उनकी दृष्टि तक नहीं जाती। वनके मार्गसे जब प्यासा पथिक सरोवरकी ओर दौड़ता है तब अगर उसके सिरपर सूखे पत्ते झड़-झड़कर गिरते हों, तो क्या वह उस तरफ ध्यान देता है! अधीर-चित्त ललितसिंहको यह विपुल सम्मान उन्हीं सूखे पत्तों जैसा नीरस हलका और अत्यन्त साधारण-सा मालूम हुआ।

अन्तमें घोड़ा जब अन्तःपुरके प्रासादके सामने जा पहुंचा, तब क्षण-भरके लिए सेनापतिने हाथकी लगाम खींची, घोड़ा क्षण-भरके लिए ठिठककर खड़ा हो गया। ललितसिंहने एक बार प्रासादके झरोखेकी ओर प्यासे नेत्रोंसे देखा, क्षण-भरके लिए देखा कि दो लज्जानत नेत्र एक बार बिजलीकी तरह उनके मुँहपर

पड़े और दो अनिन्दित बाहुओंसे एक पुष्पमाला ऊपरसे झड़कर उनके सामने जमीनपर आ गिरी। उसी क्षण घोड़ेसे उतरकर उस मालाको उठाकर मुकुटसे छुआया और एक बार कृतार्थ दृष्टिसे ऊपरकी ओर देखा। तब तक झरोखेका द्वार बन्द हो चुका था, दीपक बुझ चुका था।

३

हजारों शत्रुओंके सामने जो अविचलित था, दो मृगनेत्रोंके आगे वह पराजित हो गया! सेनापति बहुत दिनोंसे, पत्थरके किलेकी तरह, हृदयमें धैर्यकी रक्षा करते आये थे; कल शामकी बात है कि दो काली-काली आँखोंकी सम्मानयुक्त सलज्ज दृष्टिने उस किलेकी नींवपर चोट की; और इतने दिनोंका धैर्य क्षण-भरमें धूलमें मिल गया। परन्तु, छिः सेनापति, इससे क्या तुम्हें संध्याके अन्धकारमें चोरकी तरह राज-अन्तःपुरके उद्यानकी प्राचीर लाँघनी चाहिए थी? तुम भुवन-विजयी वही वीर-पुरुष हो? छिः!

मगर जो उपन्यास लिखता है, उसके लिए कहीं भी कोई बाधा नहीं। द्वारपाल नहीं रोकते, असूर्यम्पश्य-रूपा रमणियोंकी तरफसे भी कुछ आपत्ति नहीं होती। लिहाजा, इस सुरम्य वसंत-संध्यामें दक्षिण-वायु-वीजित राज-अन्तःपुरके निर्जन उद्यानमें एक बार प्रवेश करना चाहिए। और हे पाठिकाओ, तुम भी आओ, और पाठकगण, इच्छा हो तो तुम भी पीछे-पीछे आ सकते हो; मैं अभयदान देता हूँ।

एक बार देखो तो, बकुल-वृक्षके नीचेकी तृण-शय्यापर संध्या-

ताराकी प्रतिमाके समान वह रमणी कौन है? हे पाठक, हे पाठिका, तुम्हें कुछ मालूम है? ऐसा रूप कहीं देखा है तुमने? इस रूपका क्या किसी तरह वर्णन किया जा सकता है? भाषा क्या कभी किसी मन्त्र-बलसे ऐसे जीवन यौवन और लावण्यसे भर सकती है? हे पाठक, तुम्हारा अगर यदि दूसरा ब्याह हुआ हो, तो अपनी स्त्रीके मुँहकी याद करो। हे रूपवती पाठिका, जिस युवतीको देखकर तुमने संगिनीसे कहा है, 'यह ऐसी क्या देखनेमें अच्छी है, बहन! हाँ, कुछ सुन्दर है, इससे क्या, पर यह बात नहीं', उसके मुँहकी याद करो; उस वृक्षके नीचे बैठी हुई राजकुमारीके साथ उसका कुछ-कुछ सादृश्य पाओगी। पाठक और पाठिका, अब पहचाना? ये ही हैं राज-कन्या विद्युन्माला।

राजकुमारी गोदमें फूल रखकर सिर झुकाये माला गूँथ रही है। गूँथते-गूँथते एक-एक बार उंगलियाँ अपने सुकुमार कार्यमें शिथिलता कर रही हैं, उदासीन दृष्टि किसी एक अत्यन्त दूरवर्ती चिन्ता-राज्यमें भ्रमण कर रही है। राजकुमारी क्या सोच रही है?

किन्तु, हे पाठक, इस प्रश्नका उत्तर मैं नहीं दूंगा। राजकुमारी के एकान्त हृदय-मन्दिरके भीतर आज इस निस्तब्ध संध्यामें न-जाने किस मर्त्य-देवताकी आरती हो रही है, अपवित्र कुतूहल लेकर हम वहाँ प्रवेश नहीं कर सकते। वह देखो, एक दीर्घ-निःश्वास पूजाकी धूपके सुगन्धित धुएँकी तरह हवामें बिला गया, और आँसूकी दो बूँदें दो सुकोमल कुसुम-कोरकके समान अज्ञात देवताके चरणोंपर झड़ पड़ीं।

इतनेमें पीछेसे गम्भीर आवेगसे कम्पित कोई पुरुष-कंठ बोल उठा—"राजकुमारी !"

राजकुमारी सहसा भयसे चीख उठी। चारों तरफसे सिपाही दौड़ आये ; और अपराधीको कैद कर लिया। राजकुमारीको जब होश आया, तो मालूम हुआ कि सेनापति कैद कर लिए गये हैं।

४

इस अपराधमें प्राणदण्डका विधान है ; पर पूर्व-उपकारका स्मरण कर राजाने उन्हें निर्वासित करके छोड़ दिया। सेनापतिने मन ही मन कहा, 'देवी, तुम्हारे नेत्र भी जब धोखा दे सकते हैं, तो सत्य संसारमें कहीं भी नहीं ! आजसे मैं मानव-जातिका शत्रु हूं।' और तबसे ललितसिंह एक बड़े भारी दस्यु-दलके अधिपति होकर जंगलमें रहने लगे।

हे पाठक, हम-तुम जैसे आदमी इस घटनापर क्या करते ? अवश्य ही जहाँ निर्वासित होते, वहाँ और-एक नौकरीकी तलाश करते, या एक नया अखबार निकाल देते। उसमें मुसीबतोंका सामना जरूर करना पड़ता, इसमें शक नहीं ; परन्तु सेनापति जैसे महान पुरुष, जो उपन्यासोंमें सुलभ और दुनियामें दूर्लभ हैं, वे न तो नौकरी ही करते हैं और न अखबार ही निकालते हैं। वे जब सुखसे रहते हैं तब एक साँसमें निखिल जगतका उपकार करते हैं ; और मनोवांछाके तिलमात्र व्यर्थ होते ही आरक्त-नेत्रोंसे कहते हैं, 'राक्षसी दुनिया, पिशाच समाज, तेरी छातीपर पैर रखकर मैं बदला लूंगा !' और यह कहकर उसी क्षण डाकुओंके सरदार बनकर अपना

काम शुरू कर देते हैं। ऐसा अंगरेजी काव्योंमें पढ़नेमें आता है ; और अवश्य ही यह प्रथा राजपूतोंमें प्रचलित थी।

डाकुओंके उपद्रवसे देशके लोग त्रस्त हो उठे। पर ये असाधारण डाकू अनाथोंके सहायक हैं, दीनोंके बन्धु हैं, कमजोरोंकी शरण हैं, सिर्फ धनी उच्चकुलके सम्भ्रान्त व्यक्ति और राज-कर्मचारियोंके लिए अवश्य ही कालान्तक यम हैं।

गहन वन है। सूर्य अस्तप्राय है। पेड़ोंकी छायाके कारण अकाल-रात्रिका आविर्भाव हुआ है। एक तरुण युवक अपरिचित मार्गसे अकेला जा रहा है। उसका सुकुमार शरीर परिश्रमसे थक गया है, किन्तु फिर भी असीम अध्यवसाय और दृढ़ता है। कमरसे जो तलवार लटक रही है उसका भी भार असह्य मालूम पड़ रहा है, जंगलमें जरा-सा शब्द होते ही भयभीत-हृदय हरिणकी तरह चौंक उठता है ; किन्तु फिर भी वह इस आनेवाली रात और अनजान जंगलमेंसे दृढ़ संकल्पके साथ अग्रसर हो रहा है।

डाकुओंने आकर अपने सरदारसे कहा—"महाराज, बड़ा-भारी शिकार मिला है आज। सिरपर मुकुट है, राजाका वेश है, कमरमें तलवार झूल रही है।"

सरदारने कहा—"तो यह शिकार मेरा है ; तुम सब यहीं रहो।"

पथिकने चलते-चलते एक बार सहसा सूखे पत्तोंकी आवाज सुनी ; और उत्कंठित होकर चारों तरफ देखने लगा।

सहसा उसकी छातीमें आकर तीर घुस गया ; और 'मा' कहकर वह जमीनपर गिर पड़ा।

सरदारने पास जाकर घुटने टेककर झुककर घायल मुँहकी तरफ देखा। जमीनपर पड़े हुए पथिकने डाकूका हाथ पकड़कर सिर्फ एक बार मृदुस्वरमें कहा—"ललित !"

क्षणमें डाकूके हृदयके हजार टुकड़े हो गये, एक हाहाकार-भरा चीत्कार उठा—"राजकुमारी !"

और-सब डाकुओंने आकर देखा, शिकार और शिकारी दोनों ही अन्तिम आलिङ्गनमें आबद्ध होकर मरे पड़े हैं।

राजकुमारीने एक दिन संध्याके समय अपने अन्तःपुरके उद्यानमें अनजानमें ललितपर राजदण्ड छोड़ा था; ललितने और-एक दिन संध्या समय अरण्यमें अज्ञानसे राजकुमारीपर तीर छोड़ा। संसारके बाहर अगर कहीं भी दोनोंका मिलन हुआ हो; तो आज दोनोंने दोनोंको शायद क्षमा कर दिया होगा।

दीवार

१

निवारणकी गृहस्थी बहुत ही मामूली ढंगकी है; उसमें काव्यरसकी गन्ध तक नहीं। यह बात कभी उसके मनमें भी नहीं आई कि जीवनमें उक्त रसकी कोई आवश्यकता है। जैसे जाने-हुए पुराने जूतेमें पाँव बिलकुल निश्चिन्ततासे दिये जाते हैं, उसी तरह निवारण इस पुरानी पृथ्वीपर अपना चिर-अभ्यस्त स्थान दखल किये हुए है; इस विषयमें भूलकर भी वह कोई चिन्ता तर्क या तत्त्वालोचना नहीं करता।

निवारण सवेरे ही उठकर गलीके किनारे अपने दरवाजेपर उघड़े-बदन बैठ जाता और हुक्का हाथमें लिये निश्चिन्त होकर तम्बाकू पीया करता। सड़कसे आदमी आते-जाते, गाड़ी-घोड़े चलते, भिखारी गीत गाते हुए भीख माँगते चले जाते, शीशी-बोतल-कागजके फेरीवाले आवाज लगाते हुए निकल जाते, और ये सब चंचल दृश्य उसके मनको थोड़ा-बहुत बहलाये रखते। और जिस दिन कच्चे आमवाला या मछलीवाला आ जाता, उस दिन उससे बहुत दर-दाम करनेके बाद कुछ ले-लाकर विशेष रूपसे भोजनकी तैयारियाँ करानेमें जुट जाता। उसके बाद यथा-समय तेल लगाकर, नहाकर, खा-पीकर, अचकन पहनकर, पानके साथ एक चिलम तम्बाकू अच्छी तरह पीकर, फिर एक पान मुँहमें भरकर दफ्तर चला जाता। दफ्तरसे वह शामको लौटता; और पड़ोसी रामलोचन घोषके घर प्रशान्त गम्भीरताके साथ संध्या बिताता; और फिर खाने-पीनेके बाद जब रातको अपने सोनेके कमरेमें जाता तो अपनी स्त्री हरसुन्दरीसे उसकी मुलाकात होती।

उस समय, चौधरियोंके घर लड़केके ब्याहका कुँवर-भातकी, नई नौकरानीकी बेहूदगीकी और छौंक-बघार आदिकी उप-योगिताके विषयमें जो संक्षिप्त समालोचना होती, उसे आज तक किसी कविने छन्दोबद्ध नहीं किया; और इसके लिए निवारणको कोई क्षोभ भी नहीं।

इतनेमें, फागुनके महीनेमें हरसुन्दरी बहुत सख्त बीमार पड़ गई। बुखार किसी तरह पीछा ही नहीं छोड़ता। डाक्टर

ज्यों-ज्यों कुनैन देता गया, ज्वर बाधाप्राप्त प्रबल स्रोतकी तरह उतना ही बढ़ता गया। इस तरह बीस दिन, बाईस दिन, चालीस दिन तक बीमारी आगे बढ़ती ही रही।

निवारणका दफ्तर जाना बन्द हो गया। रामलोचनके यहाँ शामकी बैठकमें वह बहुत दिनोंसे नहीं गया। क्या करे और क्या न करे, उसकी कुछ समझमें नहीं आता। कभी कमरेके अन्दर जाकर रोगीकी हालत देख आता, कभी बाहरके वरामदेमें बैठकर चिन्तित मनसे तम्बाकू पीता रहता। दोनों वक्त डाकृर वैद्य बदले जाते; और जो जैसा कहता वैसी ही दवा दी जाती।

प्रेमकी ऐसी अव्यवस्थित शुश्रूषा होनेपर भी चालीस दिनमें हरसुन्दरी व्याधि-मुक्त हो गई। मगर इतनी कमजोर और ऐसी दुबली हो गई कि शरीर मानो बहुत दूरसे अत्यन्त क्षीणस्वरमें मात्र कह रहा हो कि 'मैं हूं।'

उस समय वसन्तकी दखिनी हवा चलने लगी थी; और रातमें चन्द्रमाकी चाँदनीको भी सीमन्तिनियोंके खुले हुए शयनगृह में चुपकेसे घुस आनेका अधिकार मिल गया था।

हरसुन्दरीके घरके पास ही पड़ोसीके घरका बगीचा था। वह कोई खास खूबसूरत या रमणीय स्थान हो सो बात नहीं। किसी समय किसीने उसमें शौकसे थोड़ेसे क्रोटनके पेड़ लगाये थे, उसके बाद फिर उसने उनकी तरफ कुछ ध्यान नहीं दिया। अब सूखी डालियोंके मचानपर कुम्हड़ेकी बेलें फैल गई हैं, बूढ़े बेरके पेड़के नीचे जंगल जम गया है; रसोईघरके पासकी दीवार गिर जानेसे वहाँ ईंटोंका ढेर लग गया है, और उसके साथ

ही जले हुए कोयलों और राखका ढेर भी दिन-दिन बढ़ता जा रहा है।

पर अब अपने कमरेकी खिड़कीके पास लेटकर उस बगीचेकी तरफ देख-देखकर हरसुन्दरी क्षण-क्षणमें जितना आनन्दरस पीने लगी, इसके पहले उसका सौवाँ हिस्सा भी उसने कभी नहीं पीया। गरमियोंमें स्रोतका वेग मन्द पड़ जानेसे गाँवकी छोटी-सी नदी जब अपनी बालूकी सेजपर थकी-माँदी-सी पड़ी रहती है तब उसमें जैसी अत्यन्त स्वच्छता आ जाती है; और तब जैसे प्रभातकी सूर्य-किरणोंसे उसका गला तक काँप जाता है, वायुका स्पर्श उसके सर्वाङ्गको पुलकित कर देता है और आकाशके तारे जैसे अपने स्फटिक-दर्पणोंपर सुख-स्मृतियोंकी तरह अत्यन्त स्पष्टतासे प्रतिबिम्बित होते रहते हैं, ठीक उसी तरह हरसुन्दरीके क्षीण जीवन-तन्तुओंपर आनन्दमयी प्रकृतिकी प्रत्येक अंगुली मानो स्पर्श करने लगी; और उसके अन्तःकरणके भीतर जो एक संगीत उठने लगा उसे वह पूरी तरह समझ ही न सकी।

इसी समय, उसका पति पास आकर जब पूछता कि 'कैसी हो ?' तब उसकी आँखोंसे आँसू मानो छलक पड़ते। दुबले-पतले चेहरेपर उसकी आँखें बहुत बड़ी लगती हैं; उन बड़ी-बड़ी प्रेमसे भीगी हुई सकृतज्ञ आँखोंको पतिके मुँहकी तरफ उठाकर अपने शीर्ण हाथोंसे उनका हाथ पकड़कर वह चुपचाप पड़ी रहती, पतिके हृदयमें भी मानो कहींसे एक नवीन अपरिचित आनन्दकी किरणें प्रवेश करने लगतीं।

कुछ दिन इसी तरह बीत गये। एक दिन रातको, टूटी

दीवारपर उगे हुए पीपलके पेड़की काँपती हुई शाखाओंके बीचमेंसे आकाशमें उठता हुआ पूनोंका चाँद दिखाई दिया और संध्याकी उस उमसको दूर करके सहसा निशाचर पवन जाग्रत हो उठा। ठीक इसी समय निवारणके बालोंमें उंगलियाँ फेरते हुए हरसुन्दरीने कहा—"मेरे तो कोई लड़का-बाला हुआ नहीं, अब तुम दूसरा व्याह कर लो न!"

हरसुन्दरी कुछ दिनोंसे यही बात सोच रही थी। मनमें जब एक प्रबल आनन्दका, एक तरहके गहरे प्रेमका, संचार होता है तो मनुष्य सोचता है कि मैं सब-कुछ कर सकता हूं। तब सहसा एक तरहकी आत्म-विसर्जनकी इच्छा बलवती हो उठती है। स्रोतका उच्छ्वास जैसे कठिन तटपर अपनेको जोरसे पछाड़-पछाड़कर मूर्च्छित कर देता है उसी तरह प्रेमका आवेग और आनन्दका उच्छ्वास एक महान् त्यागपर, बड़े भारी दुःखपर, अपनेको मानो पछाड़-पछाड़कर मिटा देना चाहता है।

ठीक ऐसी अवस्थामें अत्यन्त पुलकित चित्तसे एक दिन हरसुन्दरीने निश्चय किया कि 'अपने पतिके लिए मैं कोई खूब बड़ा त्याग करूँगी, परन्तु हाय, जितनी साध होती है उतना सामर्थ्य किसमें है? हाथोंके पास क्या है, क्या दिया जा सकता है? ऐश्वर्य नहीं, बुद्धि नहीं, सामर्थ्य नहीं; सिर्फ प्राण हैं, वह भी अगर कहीं देना पड़े तो मैं अभी दे दूं, लेकिन उसकी भी कीमत क्या है?'

अपने पतिको अगर दूधके फेनके समान साफ-सफेद,

मक्खनके समान कोमल, शिशु-कामदेवके समान सुन्दर, एक स्नेहकी पुतली सन्तान दे सकती ! पर अन्दरूनी तीव्र इच्छासे मर मिटनेकी कोशिश करनेपर भी तो ऐसा नहीं हो सकता। तब उसके मनमें आई कि पतिका दूसरा ब्याह करा देना चाहिए। सोचने लगी, स्त्रियाँ इससे इतना डरती क्यों हैं, यह काम तो जरा भी कठिन नहीं। जो पतिको चाहती है सौतसे प्रेम करना क्या उसके लिए इतना असाध्य है ? सोचते-सोचते छाती भर आती।

निवारणने पहले-पहल स्त्रीका यह प्रस्ताव सुना तो उसने उसे हँसीमें उड़ा दिया; और दूसरी-तीसरी बार कहनेपर भी उसपर कुछ ध्यान नहीं दिया। पतिकी इस असम्मति और अनिच्छाको देखकर हरसुन्दरी जितनी ही बढ़ने लगी, उतनी ही उसकी प्रतिज्ञा दृढ़ होने लगी।

इधर निवारणने बार-बार ज्यों-ज्यों इस अनुरोधको सुना त्यों-त्यों उसकी असम्भवता उसके मनसे दूर होने लगी; और घरके दरवाजेपर बैठकर तम्बाकू पीते समय सन्तानोंसे भरे हुए अपने घरका सुखमय चित्र उसके मनमें उज्ज्वल होकर दिखाई देने लगा।

एक दिन अपने-आप प्रसंग छेड़कर उसने कहा—"तुम कुछ भी कहो, बुढ़ापेमें एक नन्ही-सी लड़कीके साथ ब्याह करके उसे पाल-पोसकर बड़ा करना मुझसे न बनेगा।"

हरसुन्दरीने कहा—"इसके लिए तुम्हें कोई फिकर न करनी होगी। इस कामका भार मेरे ऊपर रहा।" कहते-कहते इस

सन्तान-हीन रमणीके मनमें एक किशोरी सुकुमारी लज्जाशीला माकी गोदसे हाल ही बिछुड़ी हुई नववधूका सुन्दर मुखड़ा उदित हो आया ; और उसका हृदय स्नेहसे विगलित हो उठा।

निवारणने कहा—"मेरे दफ्तर है, काम-काज है, तुम हो; तुम्हीं बताओ, उस जरा-सी लड़कीको लाड़-प्यार करनेकी मुझे फुरसत कहाँ है ?"

हरसुन्दरीने बार-बार समझाया कि उसके लिए तुम्हारा जरा भी समय नष्ट नहीं होगा ; और अन्तमें मसखरी करते हुए कहा—"अच्छा जी, तब सब देख लूंगी कहाँ तुम्हारा काम रहता है, कहाँ मैं और कहाँ तुम ?"

निवारणने इस बातका जबाब तक देनेकी जरूरत न समझी ; और दंड-स्वरूप हरसुन्दरीके कपोलपर आघात करके रह गया। यह हुई भूमिका।

२

एक छोटी-सी लड़कीके साथ निवारणका ब्याह हो गया। उसका नाम था शैलबाला।

निवारणने सोचा, नाम बड़ा मीठा है, और मुँह भी बड़ा सुन्दर गोल-मोटोल है। उसका भाव और सुभाव, उसका चेहरा, उसका चलना-फिरना वह जरा विशेष ध्यानके साथ देखना चाहता है ; लेकिन ऐसा मौका ही नहीं मिलता। बल्कि उसे भाव दिखाना पड़ता है कि जरा-सी तो लड़की है, उसे घरमें लाकर उसकी जान आफतमें फँस गई, किसी तरह उससे बचकर अपनी

अवस्थाके योग्य कर्त्तव्य-क्षेत्रमें पहुंच जाय तो उसकी जान बच जाय।

हर सुन्दरी अपने पतिके इस विपद्ग्रस्त भावको देखकर मन ही मन बड़ी खुश होती। किसी-किसी दिन निवारणका हाथ मसककर कहती—"अरे, भागे कहाँ जाते हो! जरा-सी तो लड़की है, तुम्हें निगले थोड़े ही जाती है!"

निवारण पहलेसे दूनी घबराहटके साथ कहता—"अरे ठहरो ठहरो, मुझे एक जरूरी काम है।" और भागनेकी कोशिश करता। हरसुन्दरी दरवाजा रोककर कहती —"आज तुम धोखा देकर नहीं जा सकते!" आखिर निवारण बिलकुल निरुपाय होकर चुपचाप बैठ जाता।

हरसुन्दरी कानोंके पास आकर कहती—"पराई लड़कीको घरमें लाकर इस तरह निरादर करना ठीक नहीं।"

इतना कहकर वह शैलबालाको पकड़के निवारणकी बाईं तरफ बिठा देती; और जबरदस्ती उसका घूंघट खोलकर ठोड़ी पकड़के उसके झुके हुए चेहरेको ऊपर उठाकर निवारणसे कहती—"अहा, कैसा सुन्दर चाँद-सा मुंह है, जरा देखो तो सही।"

किसी-किसी दिन दोनोंको वह अपने कमरेमें बिठाकर कामका बहाना करके चटसे उठकर चल देती; और बाहर दरवाजेकी साँकल लगा देती। निवारण निश्चित जानता था कि कुतूहलपूर्ण दो आँखें किसी-न-किसी छेदसे जरूर लग गई होंगी। निवारण अत्यन्त उपेक्षाके साथ करवट लेकर सोनेकी कोशिश करता, और

शैलबाला घूंघट खींचकर पेटमें घुटने देकर मुँह फेरके एक कोनेमें चुपचाप पड़ी रहती।

अन्तमें हरसुन्दरीने बिलकुल लाचार होकर कोशिश करना छोड़ दिया; लेकिन इससे वह बहुत ज्यादा दुःखित हुई हो सो बात नहीं।

पर आश्चर्य है कि हरसुन्दरीने जब कोशिश करना छोड़ दिया, तो स्वयं निवारणने इस ओर ध्यान देना शुरू कर दिया। यह बड़े कुतूहलकी बात है, बड़े रहस्य बात है! कहींसे कोई हीरेका टुकड़ा मिल जाय तो उसे हर तरफसे उलेट-फेरकर देखनेकी इच्छा होती है; और यह तो एक छोटा-सा सुन्दर मनुष्यका मन है, कैसा सुन्दर है, कितना अपूर्व है! इसे कितनी ही तरहसे छूकर, सुहाग करके, ओटमेंसे, सामनेसे, बगलसे देखा जाता है। कभी एक बार कानके ऐरन हिलाकर, कभी जरा घूंघट उठाकर, कभी बिजली की तरह सहसा चकित दृष्टिसे और कभी नक्षत्रकी तरह बहुत देर तक एकदृष्टिसे देखकर उसके नये-नये सौन्दर्यकी सीमाका आविष्कार किया जाता है। मैकमोरन कम्पनीके आफिसके हेड-क्लर्क श्रीयुत निवारणचन्द्रको ऐसी अभिज्ञता पहले कभी नसीब नहीं हुई थी। पहले जब उसका विवाह हुआ था तब वह बालक था, जब यौवन आया तब स्त्री उसे चिरपरिचित-सी जान पड़ी; विवाहित जीवनमें वह चिरभ्यस्त हो चुका था, पर कभी उसके मनमें रह-रहकर प्रेमका सचेतन संचार नहीं हुआ।

बिलकुल पके आमके भीतर ही जो कीड़ा पैदा हुआ है, जिसे कभी रसकी खोज नहीं करनी पड़ी, धीरे-धीरे रसका स्वाद नहीं

लेना पड़ा, उसे जरा एक बार वसन्त ऋतुके विकसित पुष्पवनमें छोड़ तो दो, फिर देखो कि विकसोन्मुख गुलाबके अधखिले मुंहके पास चक्कर लगानेमें उसका कितना आग्रह बढ़ता है। जरा-सी उसे सुगन्ध मिलती है, जरा-सा उसे मधुर आस्वाद मिलता है, तो उसीमें उसको कितना नशा होता है।

निवारण शुरू-शुरूमें कभी घाघरेवाली काँचकी गुड़िया, कभी एसेन्सकी शीशी, कभी कुछ मिठाई बाजारसे लाकर शैलबालाको छिपा-छिपाकर देने लगा। इस तरह कुछ-कुछ घनिष्ठता बढ़ने लगी। आखिर एक दिन किसी समय हरसुन्दरीने घरके कामसे छुट्टी पाकर किवाड़के छेदोंमेंसे देखा कि निवारण और शैलबाला दोनों बैठे हुए कौड़ियोंसे 'दस-पचीस' खेल रहे हैं।

बुढ़ापेका तो खेल यही है! किसी-किसी दिन निवारण सवेरे खा-पीकर दफ्तर रवाना होता; पर दफ्तर न जाकर न-जाने कब किधरसे घरमें घुसकर शैलबालाके पास पहुंच जाता। भला इस छलकी क्या जरूरत थी? सहसा एक जलती हुई वज्रशलाकासे न-मालूम किसने हरसुन्दरीकी आँखें खोल दीं; उसके तीव्र तापसे आँखोंका पानी भाप होकर सूख गया।

हरसुन्दरीने मन-ही-मन कहा, 'मैं ही तो उसे घरमें लाई, मैंने ही मिलन कराया, और मेरे ही साथ ऐसा बर्ताव! मानो मैं ही इनके सुखमें काँटा हूं!'

हरसुन्दरी शैलबालाको घरका काम-धन्धा सिखाया करती थी। एक दिन निवारणने साफ-साफ कह दिया—"अभी लड़की है, उससे तुम बहुत मेहनत न लिया करो, उसकी देहमें इतना दम नहीं है।"

हरसुन्दरीकी जबानपर एक बड़ा तीखा जवाब आ रहा था, लेकिन वह कुछ बोली नहीं, चुप रह गई।

तबसे वह नई बहूको किसी काममें हाथ नहीं लगाने देती। रसोई बनाना, परोसना, देख-भाल करना वगैरह सब काम खुद ही करती है। यहाँ तक हुआ कि शैलबाला अब हिलती-डुलती भी नहीं, और हरसुन्दरी दासीकी तरह उसकी सेवा करती है; और पति विदूषककी तरह उसका मनोरञ्जन किया करता है। घर गृहस्थीके लिए कुछ करना-धरना और घरवालोंकी देख-भाल करना उसके जीवनका कर्त्तव्य है, यह शिक्षा उसे अन्त तक मिली ही नहीं।

हरसुन्दरी जो चुपचाप दासीकी तरह काम करने लगी, उसमें बड़ा-भारी एक गर्व छिपा हुआ है। उसके भीतर न्यूनता और दीनता नहीं है। मन-ही-मन उसने कहा—'तुम दोनों बच्चे मिलकर खेलो, घरका सारा भार मैं उठाती हूं।'

३

हाय, आज कहाँ है वह बल, जिस बलपर हरसुन्दरीने सोचा था कि पतिके लिए वह चिरजीवनके लिए अपने प्रेमका आधा अधिकार बिना दुबिधाके छोड़ देगी? सहसा एक दिन पूनोकी रातमें जीवनमें जब एक ज्वार-सी आती है तब अपने दोनों तटोंको प्लावित करके मनुष्य सोचता है, 'मेरी कहीं भी सीमा नहीं है।' तब वह एक बड़ी प्रतिज्ञा कर बैठता है, परन्तु जीवनके सुदीर्घ भाटेके समय उस प्रतिज्ञाकी रक्षा करनेमें उसके प्राण खिंचने

लगते हैं। ऐश्वर्यके दिन एकाएक लेखनीकी एक लकीरसे जो 'दानपत्र' लिख दिया जाता है, चिर-दरिद्रताके दिन पल-पलमें तिल-तिल करके उसे चुकाना पड़ता है। तब समझमें आता है कि मनुष्य बड़ा दीन है, उसका हृदय बड़ा दुर्बल है, उसकी शक्ति-सामर्थ्य बहुत ही साधारण, बिलकुल ही मामूली है।

बहुत दिन बीमारी झेलनेके बाद क्षीण रक्तहीन पांडु-कलेवर हरसुन्दरी उस दिन दूजके चन्द्रमाके समान एक शीर्ण रेखामात्र थी; अपने संसारमें वह बहुत ही हलकी होकर बह रही थी। तब मालूम होता था कि 'कुछ भी न हो तो भी उसका काम चल सकता है।' क्रमशः शरीर बलिष्ठ हो उठा, खूनमें तेजी आने लगी; और तब हरसुन्दरीके मनमें न-जाने कहाँसे कुछ साझीदार आ पहुंचे, उन लोगोंने चिल्ला-चिल्लाकर कहा, 'तुम तो त्यागपत्र लिखकर बैठ गईं, पर हम अपना हक नहीं छोड़ सकते!'

हरसुन्दरीने जिस दिन पहले-पहल साफ-साफ अपनी हालत समझ ली, उस दिन निवारण और शैलबालको अपना खास कमरा सौंपकर वह अलग कमरेमें अकेली जाकर सो गई।

आठ सालकी उमरमें गौनेकी रातको जिस पलंगपर वह पहले-पहल सोई थी, आज सत्ताईस साल बाद अपने उस पलंगको उसने त्याग दिया। घरका दीआ बुझाकर वह सधवा स्त्री जब असह्य हृदय-भार लेकर अपनी नई वैधव्य-शय्यापर आ पड़ी, तब गलीके दूसरी तरफ कोई शौकीन नौजवान विहाग-रागमें मालिनीका गीत गा रहा था; गोष्ठीका एक आदमी तबला बजा रहा था और

सुननेवाले मित्रगण 'सम'के पास पहुंचते ही हा:-हा: करके शोर मचा रहे थे।

उनका वह गाना उस निस्तब्ध चाँदनी रातमें पासके घरमें बुरा नहीं लग रहा था। उस समय बालिका शैलबालाकी आँखें नींदके मारे झूम रही थीं, और निवारण उसके कानोंके पास मुँह ले जाकर धीरेसे कह रहा था—"सखी !"

इस भले-आदमीने इस बीचमें बंकिम-बाबूका 'चन्द्रशेखर' पढ़ डाला है ; और साथ ही आधुनिक कविका काव्य भी शैलबालाको पढ़कर सुना दिया है।

निवारणके जीवनके नीचेकी तहमें जो एक यौवनका स्रोत शुरूसे दबा पड़ा था, आघात पाकर सहसा वह बड़े बेमौके फट पड़ा। कोई भी इसके लिए तैयार न था, और इसीलिए अकस्मात् उसकी विवेक-बुद्धि और घर-गृहस्थीका सारा इन्तजाम उलट-पुलट हो गया। उस बेचारेको कभी भी इसकी खबर न थी कि आदमीके अन्दर ऐसे-ऐसे उपद्रवकारी पदार्थ छिपे रहते हैं, ऐसी-ऐसी प्रचण्ड दुष्ट शक्तियाँ दबी रहती हैं जो सारे हिसाब-किताबको, सिलसिला और सामञ्जस्यको इस तरह तीन-तेरह कर देती हैं !

अकेले निवारणको ही नहीं, हरसुन्दरीको भी एक नई वेदनाका परिचय मिला। मालूम नहीं यह काहेकी आकांक्षा है, यह काहेकी दु:सह वेदना है ! मन अभी जो चाहता है उसे पहले तो उसने कभी नहीं चाहा, और न कभी पाया ही है। निवारण जब भले आदमियोंकी तरह प्रति दिन नियमित रूपसे आफिस जाता

था, जब सोनेके पहले कुछ देरके लिए दूधवालेका हिसाब, चीजोंकी महँगाई और लोक-व्योहारके कर्त्तव्यके बारेमें उससे बातचीत करता था, तब तो इस अन्तर्विप्लवका कोई चिह्न तक न था। पति उससे प्रेम जरूर करता था, किन्तु उसमें तो कोई चमक या तेजी नहीं थी। वह प्रेम केवल बिन-जले ईंधनके समान था, बस।

मगर आज हरसुन्दरीको ऐसा मालूम होने लगा कि जीवनकी सफलतासे मानो कोई उसे हमेशासे वञ्चित करता आया है। उसका हृदय मानो हमेशासे उपवास करता आया है। उसका यह नारी-जीवन अत्यन्त गरीबीमें ही कटा है। उसने अपनी जिन्दगीके पिछले सत्ताईस साल सिर्फ साग-तरकारी, आटा-दाल आदिके झंझटमें ही दासीकी तरह बिताये हैं; और अब जीवनके बीच रास्तेमें आकर देखा तो, उसीके शयनगृहके पास एक गुप्त और महान् ऐश्वर्यके भण्डारका ताला खोलकर एक छोटी-सी लड़की अकस्मात् राजराजेश्वरी बन बैठी है! माना कि नारी दासी है, पर साथ ही नारी रानी भी तो है। यह कैसा बटवारा कि एक नारी हुई दासी और दूसरी हुई रानी! इससे दासीका गौरव जाता रहा, और रानीको सुख भी नहीं मिला।

कारण, शैलबालाको भी नारी-जीवनके यथार्थ सुखका स्वाद नहीं मिला। लगातार उसने इतना लाड़-प्यार पाया कि प्रेम करनेका उसे क्षण-भर भी मौका नहीं मिला। समुद्रकी ओर बहते रहने और समुद्रमें ही अपनेको विलीन करनेमें नदीकी शायद कोई महान् सार्थकता होगी; किन्तु समुद्र यदि ज्वारके बहावमें

खिन्नकर लगातार नदीका सामना करता रहे तो, नदी जो केवल अपनेमें ही आप फूलती रहेगी ! घर-गृहस्थी अपना सारा लाड़-सुहाग लेकर दिन-रात शैलबालाकी ओर बढ़ती रही, जिससे शैलबालाका आत्माभिमान बहुत ही ऊँचेको चढ़ने लगा ; और घरसे उसका प्रेम न हो पाया। उसने समझा, 'मेरे लिए ही सब कुछ है, मैं किसीके लिए भी नहीं हूं।' इस तरहकी अवस्थामें अहङ्कार काफी है, किन्तु तृप्ति जरा भी नहीं।

४

एक दिन घनघोर बादल झुक आये। ऐसा अँधेरा छा गया कि घरमें काम-धन्धा करना मुश्किल हो गया। बाहर झमझम बरसा हो रही है। बेरके पेड़के नीचेके छोटे छोटे पौधे और लताएँ पानीमें डूब गई हैं ; और दीवारके बगलका नाला बड़े जोरोंसे बह रहा है। हरसुन्दरी अपने निर्जन अँधेरे कमरेमें खिड़कीके पास चुपचाप बैठी है।

इसी समय निवारण चोरकी तरह चुपकेसे दरवाजेके पास पहुंचा। उसकी कुछ समझमें न आया कि लौट पड़े या आगे बढ़े। हरसुन्दरीने सब-कुछ देख लिया ; पर मुँहसे कुछ बोली नहीं।

इतनेमें सहसा निवारण एकदम तीरकी तरह हरसुन्दरीके पास जाकर एक साँसमें कह डाला—"कुछ गहनोंकी जरूरत है ; बहुत-सा कर्ज सरपर सवार है, महाजन बड़ी बेइज्जती कर रहे हैं, कुछ गिरवी रखकर उनसे पिण्ड छुड़ाना है ; फिर जल्दी ही छुड़ा कर तुम्हें दे दूंगा ?"

हरसुन्दरीने कुछ जवाब नहीं दिया। निवारण चोरकी तरह खड़ा रहा। अन्तमें फिर बोला—"तो क्या आज न दे सकोगी ?"

हरसुन्दरीने कहा—"नहीं।"

उसके लिए घरमें घुसना जितना कठिन हो रहा था, वहाँसे बाहर निकलना भी उतना ही कठिन हो गया। निवारणने जरा संकोचके साथ कहा—"तो कहीं दूसरी जगह कोशिश करूँ!" और चल दिया।

किसका कर्ज देना है और कहाँ गहने गिरवी रखे जायँगे, हरसुन्दरी सब समझ गई। समझ लिया कि नई बहूने कल रात को अपने इस पालतू पुरुषको बड़ी ठसकके साथ कहा होगा—'जीजीके पास सन्दूक भरे गहने पड़े हैं; और मेरे लिए एक भी नहीं दिलाते!'

निवारणके चले जानेपर उसने धीरेसे उठकर लोहेका सन्दूक खोला और उसमेंसे एक-एक करके सब गहने निकाल लिये। शैलबालाको बुलाकर पहले उसे व्याहकी साड़ी पहनाई; उसके बाद सिरसे लेकर पैर तक उसे जेवरोंसे लाद दिया। अच्छी तरह जूड़ा बाँधकर दीआ जलाकर देखा, बालिकाका मुँह बड़ा मधुर है, तुरत-पके सुगन्धित फलके समान गोल-मटोल चेहरा है। रसभरी शैलबाला जब झमझम करती हुई चली गई तब उसकी वह आवाज बहुत देर तक हरसुन्दरीकी नसोंमें खूनके भीतर झनझनाती रही। अपने मनमें कहने लगी, 'अब आज इससे मेरी तुलना किस बातपर हो सकती है? पर किसी समय मेरी भी तो यही उमर थी, मैं भी तो इसकी तरह

यौवनकी अन्तिम रेखा तक भर उठी थी, तो फिर मुझे इसकी खबर किसीने क्यों नहीं दी ? कब वह दिन आया और कब चला गया, उसकी मुझे कुछ भी खबर न लगी। लेकिन इसे देखो, कैसी ठसकसे, कितने गौरवसे, किस तरंगसे चलती है !'

हरसुन्दरी जब केवल घर-गृहस्थीको ही अपना सब-कुछ जानती थी तब ये गहने उसके लिए कितने कीमती थे ! तब क्या वह अपने इन गहनोंको इस तरह एकसाथ उठाकर दूसरेको दे देती ? अब वह गृहस्थीके अलावा और एक बड़ी चीजसे वाकिफ हो गई है ; अब इन गहनोंकी कीमत और भविष्यका हिसाब उसके लिए बहुत ही तुच्छ चीज है।

और शैलबाला, सोने-जवाहरातके गहने पहनकर छमछम करती हुई सीधी अपने कमरेमें चली गई, उसने एक बार क्षण-भरके लिए सोचा तक नहीं कि हरसुन्दरीने उसे कितना दे डाला ! उसने समझा कि चारों तरफकी सब सेवाएँ, सारी सम्पदा और सारा सौभाग्य स्वाभाविक नियमानुसार उसीमें आकर समाप्त होगा। इसका कारण ? यही न कि वह आज है अपने प्रियतमकी 'सखी', 'शैलबाला' !

५

बाज आदमी ऐसे होते हैं कि सपनेकी हालतमें ही सोते-सोते निर्भीकताके साथ अत्यन्त संकटके मार्गसे चलते चले जाते हैं, जरा भी विचार नहीं करते, इसी तरह, बहुतसे जाग्रत मनुष्योंकी भी ठीक ऐसी ही दशा होती है ; उन्हें बाहरका कुछ

भी होश नहीं रहता. वे हमेशा स्वप्नावस्थामें ही रहते हैं, विपत्तिके संकीर्ण मार्गसे निश्चिन्त होकर आगे बढ़ते रहते हैं, और अन्तमें जबरदस्त ध्वंसकी स्थितिमें जाकर जाग उठते हैं।

हमारे मैकमोरन कम्पनीके हेड-क्लर्ककी भी वही दशा हुई। शैलबाला उसके जीवनके मध्य-स्रोतमें एक जबरदस्त भँवरकी तरह घूमने लगी ; और बहुत दूर-दूरसे बहुत-सी कीमती चीजें आ-आकर उसमें विलीन होने लगीं। सिर्फ निवारणकी मनुष्यता और तनखा, हरसुन्दरीका सुख-सौभाग्य और गहने कपड़े ही नहीं, बल्कि उनके साथ मैकमोरन कम्पनीकी रोकड़ भी अज्ञात-रूपसे उस भँवरमें खिंचने लगी। उसमेंसे भी दो-चार-दस करते-करते धीरे-धीरे थैली-की-थैली गायब होने लगी। निवारण सोचता कि 'अपनी तनखासे धीरे-धीरे सब चुका दूंगा।' पर ज्यों ही तनखा हाथ पड़ती, सोचने लगता, 'इस महीनेमें नहीं, अगले महीनेसे चुकाना शुरू कर दूंगा।' वह इसी तरह सोचता गया और हर महीनेकी तनखा भँवरमें पड़ती गई।

अन्तमें एक दिन पकड़ा गया। पुश्तैनी नौकरी थी ; साहब उसे बहुत चाहता था। तहबील पूरी करनेके लिए उसने दो दिनका समय दिया।

मजेकी बात तो यह है कि किस तरह उसने धीरे-धीरे ढाई हजार रुपये गायब कर दिये, इस बातको वह खुद ही न समझ सका। जब समझा तब बिलकुल पागल-सा हो गया। हर-सुन्दरीके पास जाकर बोला—"अब बचनेका कोई रास्ता नहीं, सब सत्यानास हो गया !"

सब हाल सुनकर हरसुन्दरीका चेहरा सफेद-फक पड़ गया।

निवारणने कहा—"अपने गहने दो तो बच सकता हूं।"

हरसुन्दरीने कहा—"मैं तो सब गहने छोटी बहूको दे चुकी।"

निवारण बिलकुल बच्चेकी तरह अधीर होकर कहने लगा—"क्यों दे दिये उसे, क्यों दे दिये? तुमसे किसने कहा था कि तुम दे देना?"

हरसुन्दरीने इसका ठीक जवाब न देकर कहा—"सो, इसमें हर्ज ही क्या हो गया? कोई कुएँमें तो पड़ ही नहीं गये!"

कायर निवारणने दीनताके स्वरमें कहा—"तो तुम किसी बहानेसे उससे निकाल लाओ। लेकिन तुम्हें मेरी सौगंद है, मेरा नाम न लेना; और न यह कहना कि किस लिए चाहिए।"

तब हरसुन्दरी मर्मभेदी क्रोध और घृणाके साथ कह उठी—"यह क्या बहाना करनेका और सुहाग दिखानेका वक्त है! चलो, मैं चलती हूं।" और पतिको साथ लेकर तुरन्त छोटी बहूके कमरेमें पहुंच गई।

छोटी बहू कुछ भी नहीं समझी। बराबर यही कहती रही—"सो मैं क्या जानूं!"

ऐसी कोई शर्त उसके साथ थी क्या कि उसे घर-गृहस्थीके बारेमें कोई चिन्ता-फिकर करनी पड़ेगी? बात तो यों होनी चाहिए कि सब अपनी-अपनी फिकर आप करें, और सब मिलकर शैलबालाको आराम पहुंचानेकी सोचें। पर आज अचानक उसका व्यतिक्रम क्यों? यह तो अन्याय है!

आखिर निवारण शैलबालाके पैरों पड़कर रोने लगा।

शैलबाला बार-बार यही कहने लगी—"सो मैं क्या जानूँ। अपनी चीज मैं क्यों दूं?"

निवारणने देखा कि यह कमजोर छोटी-सी सुन्दर सुकुमारी लोहेके सन्दूकसे भी ज्यादा कठोर है। हरसुन्दरी संकटके समय पतिकी इस कमजोरीको देखकर मारे घृणाके जल-भुन गई। शैलबालासे उसने जबरदस्ती चाभीका गुच्छा छीनना चाहा, पर शैलबाला ताड़ गई और चटसे चाभीका गुच्छा उसने दीवारके उस पार तालाबमें फेंक दिया।

हरसुन्दरीने अपने हतबुद्धि पतिसे कहा—"देखते क्या हो, ताला तोड़ डालो।"

शैलबालाने प्रशान्त भावसे कहा—"तो मैं गलेमें फाँसी डालकर मर जाऊँगी।"

निवारणने कहा—"अच्छा जाने दो, मैं और-कोई कोशिश करता हूं।" और यों ही बिना कुछ कपड़े-लत्ते पहने चल दिया।

निवारण दो ही घंटेके अन्दर पैत्रिक मकान ढाई हजार रुपयेमें बेच आया।

बड़ी-भारी कोशिश और मुसीबतोंका सामना करनेके बाद किसी कदर हाथोंमें हथकड़ी तो नहीं पड़ी, पर नौकरी छूट गई। स्थावर और जंगम सम्पत्तिमें अब सिर्फ दो स्त्रियाँ ही बाकी बची हैं। उनमेंसे तकलीफोंसे परेशान बालिका स्त्री तो गर्भवती होकर बिलकुल स्थावर-सी ही हो गई है। अपनी दोनों सम्पत्तियोंके साथ निवारण एक छोटी-सी गलीमें सीढ़वाले जरा-से मकानमें गुजर कर रहा है।

६

छोटी बहूके असन्तोष और रोगका कोई अन्त ही नहीं। वह किसी भी तरह यह नहीं समझना चाहती कि पति उसके असमर्थ हो गये हैं। वह तो एक ही बात जानती है कि सामर्थ्य नहीं तो ब्याह क्यों किया था ?

पहली मंजिलमें सिर्फ दो ही कोठरियाँ थीं। एक कोठरीमें रहते हैं निवारण और शैलबाला, और दूसरी कोठरीमें हरसुन्दरी। शैलबाला हरवक्त खुनखुन करती रहती, 'मुझसे नहीं रहा जाता इस कोठरीमें रात-दिन।'

निवारण झूठमूठको तसल्ली देकर कहता—"दूसरे मकानकी तलाशमें हूं, जल्दी ही बदलूंगा।"

शैलबाला कहती—"क्यों, यह है तो सही बगलवाला कमरा।"

शैलबालाने अपनी पहलेकी पड़ोसिनोंकी तरफ कभी मुँह उठाकर देखा भी न था। निवारणकी मौजूदा गिरी हुई हालतसे व्यथित होकर एक दिन वे इनके घर आईं। पर शैलबाला घरका दरवाजा बन्द करके बैठ रही, हजार कहने-सुननेपर भी खोला नहीं। पर मजेकी बात यह कि पड़ोसिनोंके चले जानेके बाद उसने गुस्सा होकर, रो-रोकर, उपासी रहकर, हिस्टीरिया पैदा करके मुहल्ले-भरके नाकों दम कर दिया। और ऐसा ऊधम अकसर होने लगा।

आखिर नतीजा यह हुआ कि अपने इस शारीरिक संकटके

समयमें शैलबाला सख्त बीमार पड़ गई ; यहाँ तक कि गर्भ गिरने तककी नौबत आ गई।

निवारणने हरसुन्दरीके दोनों हाथ पकड़ लिये ; और कहा—"तुम किसी तरह इसे बचाओ।"

हरसुन्दरीने न दिन देखा, न रात ; जी-जानसे शैलबालाकी सेवा-टहल करने लगी। किसी बातमें जरा भी कसर रह जाती तो शैलबाला उससे झिड़ककर जवाब-तलब करती, लेकिन हरसुन्दरी जवाब तक न देती। और अपना फर्ज पूरा करती रहती।

शैलबाला पथ्य लेनेसे इन्कार करती, बिगड़ उठती, साबूदानेका कटोरा जमीनपर दे मारती, चढ़े बुखारमें आमके अचारसे भात खाना चाहती, और न मिलनेपर रो-रोकर जमीन-आसमान एक कर देती। और हरसुन्दरी अत्यन्त धीरजके साथ 'मेरी रानी', 'मेरी बहन' इत्यादि कहकर बराबर उसे बच्चोंकी तरह बहलानेकी कोशिश करती रहती।

आखिर शैलबाला बची ही नहीं, गृहस्थीका सारा सुहाग और सारा लाड़-प्यार लेकर जटिल रोग और अत्यन्त असन्तोषसे बालिकाका छोटा-सा अधूरा व्यर्थ जीवन आखिर खतम हो गया।

७

निवारणको शुरू-शुरूमें तो बड़ा-भारी सदमा पहुंचा ; फिर सोचा कि एक बड़ा-भारी बन्धन टूट गया। असलमें, शोकमें भी सहसा उसे एक मुक्तिका आनन्द प्राप्त हुआ। एकाएक ऐसा

लगा कि इतने दिनोंसे मानो उसकी छातीपर कोई दुःस्वप्नका पहाड़ जमा बैठा था। आज होश आनेपर क्षण-भरमें उसका जीवन बिलकुल हलका हो गया। माधवी-लताकी तरह यह जो सुकोमल जिन्दगीकी फाँस टूट गई, वही थी क्या उसकी शैलबाला? सहसा एक गहरी साँस लेकर मन-ही-मन बोला—'नहीं, वह उसके गलेकी फाँसी थी।'

और, उसकी चिरजीवनकी संगिनी हरसुन्दरी? सोचने लगा, वही तो आज उसकी पूरी घर-गृहस्थीपर अकेली दखल जमाये बैठी है, जीवनके सारे सुख-दुःखोंके स्मृति-मन्दिरके बीच अकेली वही तो है, और तो कोई नहीं; किन्तु फिर भी बीचमें विच्छेद है। मानो एक छोटी-सी चमकती हुई सुन्दर निष्ठुर कटारने आकर एक हृदयके दाएँ और बाएँ अंशके बीचमें वेदनापूर्ण गहरी विदारण-रेखा खींच दी हो।

एक दिन गहरी रातको, सारा शहर जब सो रहा था, निवारणने दबे-पाँव चुपकेसे हरसुन्दरीके सोनेके कमरेमें प्रवेश किया; और चुपचाप अपने पुराने नियमानुसार पुरानी शय्याके दाहने हिस्सेपर सो रहा। पर अबकी बार वह अपने उस चिर-अधिकारके अन्दर पहलेकी तरह न घुस सका, चोरकी तरह घुसा।

हरसुन्दरी कुछ भी न बोली; निवारणके मुँहसे भी कोई बात नहीं निकली। पहले जिस तरह दोनों अगल-बगल सोया करते थे, अब भी उसी तरह अगल-बगल सोये; पर बीचमें एक मरी हुई बालिका पड़ी ही रही, उस 'दीवार'को कोई भी न लाँघ सका।

ढक्कन

पाँवके तलवे इस ढंगसे बने थे कि उसके मुकाबले जमीनपर खड़े-खड़े चलनेकी ऐसी सुन्दर व्यवस्था और-कुछ हो ही नहीं सकती थी। मगर जिस दिनसे हमने जूते पहनना शुरू कर दिया उसी दिनसे तलवोंको मिट्टीके संसर्गसे बचाकर उनकी जरूरतको ही मिट्टीमें मिला दिया। तलवे अब तक बड़ी आसानीसे हमारा बोझ ढो रहे थे, मगर अब तलवोंका भार हमें ही सम्हालना पड़ रहा है। अब नंगे-पाँव सड़कपर चलते हैं तो तलवे हमारी मदद न करके उलटे कदम-कदमपर तकलीफका कारण बन जाते हैं। सिर्फ इतना ही नहीं, उनके बारेमें हमेशा हमें चौकन्ना रहना पड़ता है; मनको तलवोंकी सेवामें तैनात न रखें तो मुसीबत आ सकती है; तलवोंमें ठंड लग गई तो छींकें आने लगती हैं, पानीमें भीगे रहे तो बुखार आ जाता है; नतीजा यह होता है कि बूट, एड़ीदार जूते आदि विविध उपचार-उपकरणोंसे तलवोंकी पूजा करते-करते हम सभी कामोंसे उन्हें छुट्टी ही देते जाते हैं। विधाताने हमें खुर नहीं दिये, शायद इसीलिए इस तरह हम उन्हें उस बातकी याद दिलानेकी कोशिश कर रहे हैं।

इसी तरह विश्व-जगत और अपनी स्वाधीन-शक्तिके दरमियान हमने अपने सुभीतेके लालचसे बहुत-सी दीवारें खड़ी कर ली हैं। इसी तरह अपने संस्कार और आदतोंकी वजहसे इन सब कृत्रिम आधार और आश्रयोंको ही हम सुविधा या सहूलियत समझ बैठे हैं; और अपनी स्वाभाविक शक्तियोंको असुविधा या अड़चन

समझने लगे हैं ! कपड़े पहनते-पहनते हमने ऐसा कर डाला है कि कपड़ेको अपने चमड़ेसे भी बड़ा मानने लगे हैं; विधाताके बनाये हुए अपने इस आश्चर्यजनक सुन्दर उघड़े शरीरकी हम अवज्ञा और असम्मान करने लगे हैं।

परन्तु हमारे इस गरम देशमें कपड़े और जूते कभी भी अन्ध-संस्कारमें शामिल नहीं थे। एक-तो वैसे ही स्वभावतः हमारे यहाँ कपड़ोंका चलन नहींके बराबर था, उसपर बचपनमें लड़के लड़कियाँ बहुत दिनों तक कपड़े-जूते न पहनकर अपने नग्न शरीरके साथ नग्न जगतका सम्बन्ध, बिना किसी सङ्कोचके, सुन्दर ढंगसे बनाये रखते थे। मगर अब हमने अंग्रेजोंकी नकल करके बच्चोंके शरीरके लिए भी शरम करना शुरू कर दिया है। सिर्फ विलायतसे लौटे हुए ही नहीं, बल्कि शहरोंमें रहनेवाले साधारण भारतीय गृहस्थ भी आजकल घरके बच्चोंको किसी अतिथि या मेहमानके सामने उघड़े-बदन या नंग-धड़ंग आते देखते हैं तो सङ्कोच करने लगते हैं; और इस तरह हम बच्चोंको भी अपनी स्वाभाविक देहके बारेमें सङ्कोचशील या शरमिन्दा बनाये डालते हैं।

इस तरह हमारे देशके शिक्षित और शरीफ लोगोंने एक तरहकी बनावटी शरम पैदा कर ली है और करते जा रहे हैं। जिस उमर तक हमारे बच्चोंके अन्दर अपने शरीरके विषयमें किसी भी तरहका सङ्कोच या शरम नहीं होना चाहिए, उनकी उस उमरको अब हम उसी तरह पार नहीं करने देते; अब तो जन्मसे ही मनुष्य हमारे लिए लज्जाका विषय हुआ जा रहा है। होते होते अन्तमें ऐसा भी एक दिन देखनेमें आयेगा जब कि कुर्सी

टेबिलके पाये भी कहीं अनढके दिखाई दे गये तो मारे शर्मके हमारे कान सुर्ख हो उठेंगे।

यह बला सिर्फ लज्जा तक ही सीमित रह जाती, तो भी कोई बात नहीं थी; पर इससे जो दुनियामें दुःख बढ़ रहा है उसका क्या किया जाय? हमारी इस लज्जाके कारण बच्चे जो झूठमूठ को कष्ट पा रहे हैं? बेचारे बच्चे तो अभी तक प्रकृतिके ही ऋणी हैं, सभ्यताका कर्ज लेकर वे उसके असामी नहीं बनाना चाहते। मगर बेचारोंका कुछ जोर नहीं चलता; सिवा रोनेके उनके पास और कोई हथियार नहीं; करें तो क्या करें? अपने अभिभावकोंकी लज्जा दूर करने और गौरव बढ़ानेके लिए लेस और सिल्कके 'ढक्कन' से ढके रहते हैं, हवाके लाड़-प्यार और प्रकाशके चुम्बनसे वञ्चित बेचारे चिल्ला-चिल्लाकर बहरे न्यायाधीश के कानोंकी अदालतमें अपने शिशु-जीवनका मामला पेश करते रहते हैं। वे नहीं जानते कि मा-बाप दोनों एक्जिक्यूटिव (शासक) और जुडीशियल (विचारक) के रूपमें एकसाथ मिल जानेसे उनका सारा आन्दोलन और प्रार्थनाएँ व्यर्थ हो जाती है।

मा-बाप या अभिभावकोंके लिए यह दुःखदायक है। बच्चोंके अन्दर असमयमें शरम पैदा कराके खुद उनके लिए भी जीका जञ्जाल बढ़ जाता है। जो शरीफ-आदमी नहीं बल्कि सिर्फ भोले बच्चे हैं, उन्हें भी एकदम शुरूसे ही अर्थहीन शराफत सिखा कर फजूलखर्च करनेका रास्ता दिखाया जा रहा है। आखिर क्यों? नग्नता खुद एक सुविधा ही है, उसमें किसीसे किसीकी होड़ नहीं है। परन्तु कपड़े पहनना शुरू करते ही शौककी मात्रा और

आडम्बरकी तैयारियाँ होड़ा-होड़ीसे आगे बढ़ने लगती हैं। बच्चों का माखन-सा कोमल सुन्दर शरीर बेचारा धन-दौलतकी शान दिखानेका आधार या जरिया बन जाता है, और बड़प्पनका बोझ बिना वजह ही हदसे ज्यादा बढ़ता रहता है। आखिर क्यों ?

इस विषयमें आर्थिक या डाक्टरी बहस मुझे नहीं छेड़ना। मैं शिक्षाकी तरफसे कह रहा हूं। मिट्टी पानी हवा और प्रकाशके साथ पूरा-पूरा सम्बन्ध बगैर रहे शरीरकी शिक्षा सम्पूर्ण नहीं होती। जाड़ोंमें या गरमियोंमें किसी भी समय हमारे मुँह ढके नहीं रहते, और इसीसे हमारे मुँहका चमड़ा देहके चमड़ेसे ज्यादा शिक्षित है; यानी बाहरके साथ किस तरह अपने सामञ्जस्यकी रक्षा करते हुए चलना चाहिए इसे वह ठीक तौरसे जानता है। वह अपने ही में आप सम्पूर्ण है; उसे कृत्रिम आश्रय या बनावटी सहारा प्रायः लेना ही नहीं पड़ता।

यह बात तो कहना ही व्यर्थ है कि मैं मैनचेस्टरको कंगाल बना देनेके लिए अंगरेजी राज्यमें नग्नताका प्रचार करने नहीं बैठा। मेरे कहनेका मतलब यही है कि शिक्षा पानेकी एक उमर होती है; और वह है 'बचपन'। उस समय हमारे शरीर-मनकी परिणतिके लिए प्रकृतिके साथ हमारा बाधा-हीन योग होना चाहिए। वह समय ढकने-झाँपनेका नहीं; उस समय सभ्यता बिलकुल ही अनावश्यक है। परन्तु जब देखते हैं कि उसी समयसे बच्चोंकी सभ्यताके साथ लड़ाई शुरू हो जाती है, तो दुःख होता है। बच्चा ओढ़ना फेंक देना चाहता है और हम उसे ढकना ही चाहते हैं! असलमें यह झगड़ा तो बच्चेके साथ नहीं, झगड़ा है प्रकृतिके

साथ। प्रकृतिमें जो एक पुराना ज्ञान है वह कपड़े पहनाते समय बच्चेके भीतरसे विरोध करता रहता है; असलमें हम ही तो उसके सामने बच्चे हैं।

जैसे भी हो, सभ्यताके साथ हमारा एक समझौता हो जाना चाहिए। कम-से-कम एक खास उमर तक सभ्यताके इलाकेको सीमाबद्ध कर देना चाहिए। मैं बहुत घटाकर कहता हूं, सात साल तक। यहां तक बच्चेको सजानेकी जरूरत नहीं, लज्जाकी जरूरत नहीं। तब तक बर्बरताकी जो अत्यावश्यक शिक्षा है उसे प्रकृतिके हाथसे ही सम्पन्न होने देना चाहिए। बालक उस समय भी अगर धरती-माताकी गोदमें लोटकर धूल-मिट्टी न लपेट सका, तो फिर कब उसे वह सौभाग्य मिलेगा? वह उस उमरमें भी अगर पेड़ोंपर चढ़कर फल न तोड़ सका, तो समझ लो कि यह अभागा सभ्यताकी लोकलाजसे जिन्दगी-भरके लिए पेड़-पौधोंसे अन्तरङ्ग मित्रता करनेसे वञ्चित रहा। उस समय हवा प्रकाश मैदान और पेड़-पौधोंकी ओर उसके शरीर और मनका जो एक स्वाभाविक खिंचाव होता है, सब जगहसे उसके लिए जो एक निमन्त्रण आया करता है उसपर अगर कपड़े-लत्ते और दीवार-दरवाजेकी रोक लगा दी जाय, तो बच्चेका सारा उद्यम ही रुक जाता है, और उसकी बुरी हालत हो जाती है। चारों तरफ खुला मिलने या सब तरहकी छूटपट्टी मिलनेसे जो उत्साह स्वास्थ्यकर साबित होता, रुकावट पड़नेसे वही दूषित हो जाता है।

बच्चेको कपड़े पहनानेसे, उसके लिए, उसे सावधानीसे रखना पड़ता है। बच्चेकी कुछ कीमत है या नहीं, इस बातकी भी हमें

हरवक्त याद नहीं रहती ; पर दरजीका हिसाब हम नहीं भूलते। कपड़े फटते हैं, मैले होते हैं, परेशानी है। 'इतने रुपये लगाकर ऐसा बढ़िया कोट बनवा दिया था, नालायक जाने कहाँसे कालिख लगा लाया', यह कहकर यथोचित तमाचे लगा और कान एंठकर बच्चेके सबसे बड़े सौभाग्य खेलने-कूदनेके आनन्दको धूलमें मिलाकर, उसे हम, कपड़े कैसे सम्हाल-सहेजकर रखे जाते हैं सिखाते हैं। जिन कपड़ोंकी उसे कोई भी जरूरत नहीं, उन कपड़ोंके लिए बेचारेको इसी उमरमें ऐसा जिम्मेवार क्यों बनाया जाता है ? विधाताने बाहरकी खुली हवामें उनके लिए जो-कुछ सुखका आयोजन कर रखा है और उनके मनमें धारावाहिक आनन्द लूटनेकी जो ताकत दे रखी है, निकम्मी और नाचीज पोशाककी ममतासे उनके जीवनारम्भके उस सरल आनन्दके लीला-क्षेत्रको अकारण ही इस तरह विघ्न-बाधाओंके काँटोंसे भर देनेकी क्या जरूरत है ? मनुष्य क्या सर्वत्र ही अपनी क्षुद्र बुद्धि और तुच्छ प्रवृत्तिका शासन फैलाकर कहीं भी सुख-शान्तिका स्थान न रहने देगा ? हमें अच्छा लगता है इसलिए, जैसे भी हो बच्चेको भी वह अच्छा लगना चाहिए, इस धींगाधींगीकी युक्तिसे क्या हम संसारमें चारों तरफ दुःख-ही-दुःख फैलाते रहेंगे ?

कुछ भी हो, जो कार्य प्रकृतिके करनेका है उसे हम हरगिज नहीं कर सकते। इसलिए हमें ऐसी प्रतिज्ञा न करके कि मनुष्य की सारी भलाई हम सब बुद्धिमान ही मिलकर करेंगे, प्रकृतिके लिए भी थोड़ा-सा काम छोड़ देना चाहिए। यह बात अगर शुरूमें ही हो जाय तो भद्रता या सभ्यताके साथ किसी तरहका

विरोध भी न खड़ा हो और नींव भी पक्की हो जाय। इस प्राकृतिक शिक्षासे सिर्फ बच्चोंकी ही भलाई हो सो बात नहीं, इससे हमारा भी उपकार होगा। हम अपने हाथके कामोंसे सब कुछ ढक देते हैं और उसीमें अपने अभ्यास या आदतोंको ऐसा विकृत कर डालते हैं कि फिर स्वाभाविकको हम किसी भी तरह सहजदृष्टिसे देख ही नहीं सकते। हम मनुष्यके सुन्दर शरीरको यदि निर्मल बाल्य-अवस्थामें भी नग्न देखनेके आदी न बने रहे, तो विलायतके आदमियोंकी तरह हमारे मनमें भी शरीरके बारेमें एक विकृत संस्कार बैठ जायगा, जो कि वास्तवमें बर्बर और लज्जाके ही योग्य है।

इसमें शक नहीं कि भद्र-समाजमें कपड़े-लत्ते और मोजे-जूतोंकी जरूरत होनेके कारण ही इन चीजोंकी सृष्टि हुई है, परन्तु इन सब कृत्रिम सहायोंको 'प्रभु' मानकर उनके सामने अपनेको संकुचित बनाये रखना कतई उचित नहीं। इस उलटे कामसे हरगिज अच्छा फल नहीं हो सकता। कम-से-कम भारतवर्षकी आब-हवा ऐसी ही है कि हमारे लिए इन-सब बाहरी चीजोंका हर-हमेश दास बना रहना बिलकुल व्यर्थ है। इसकी कोई जरूरत ही नहीं। और न हम कभी इनके दास थे ही। हमने अपनी जरूरतके माफिक कभी पोशाक पहनी है और कभी खोलकर रख भी दी है। पोशाक एक नैमित्तिक चीज है। इससे हमारी जरूरतें पूरी होती हैं, बस। कपड़ोंपर हमारा प्रभुत्व हमेशासे रहा है, हमपर कपड़ोंका प्रभुत्व कभी नहीं रहा। यही कारण है कि बदनपर कपड़ा न होनेपर हम पहले कभी लज्जित नहीं हुए; और दूसरोंको भी उघड़े

बदन देखकर हमें कभी गुस्सा नहीं आया। इस विषयमें विधाता की कृपासे यूरोपवालोंकी अपेक्षा हमारे लिए खास सहूलियत थी। हमने जरूरतके माफिक अपनी आबरू या लज्जाकी रक्षा भी की है और साथ ही फजूलकी शरमसे अपनेको परेशानीमें नहीं डाला।

यह बात याद रखना चाहिए कि फजूलकी शरम जरूरी शरम को मार डालती है। क्योंकि फजूलकी शरम खुद ही शरमनाक चीज है। इसके अलावा जबरदस्ती लादे हुए बन्धनको आदमी जब एक बार तोड़ फेंकता है तो फिर उसे किसी तरहका विचार या दुविधा नहीं रहती। माना कि हमारे यहाँकी स्त्रियाँ शरीरपर ज्यादा कपड़े नहीं लादतीं ; मगर फिर भी वे जान-बूझकर कोशिश करके छाती और पीठके आवरणका बारह-आना हिस्सा खोलकर पुरुष-समाजमें हरगिज नहीं निकल सकतीं। हम अगर शरम नहीं करते तो शरमको इस तरह चोट भी तो नहीं पहुंचाते।

पर हम यहाँ शरमतत्त्वपर चर्चा करने नहीं बैठे। इसलिए इस बातको हम यहीं छोड़ देते हैं। हमारा कहना यह है कि मनुष्यकी सभ्यता आज बनावटीपनका सहारा लेनेको मजबूर है, इसलिए हमें इस बातकी निगरानी रखनी चाहिए कि वह बनावटीपन हमारे अभ्यास-दोषसे कहीं हमारा मालिक ही न बन बैठे। हमें चाहिए कि हम अपनी ही बनाई चीजोंके गुलाम न बनकर हमेशा उनपर अपना प्रभुत्व कायम रख सकें। हमारा रुपया जब हम ही को खरीद लेता है, हमारी भाषा जब हमारे ही भावोंको नाकमें नकेल डालकर घुमा-घुमा मारती है, हमारी पोशाक जब हमारे ही अंगोंको अनावश्यक या बेकार बना डालनेकी कोशिश करती है,

हमारा नित्यकर्म जब नैमित्तिकके सामने अपराधीकी तरह सिकुड़कर खड़ा हो जाता है, तब सभ्यताके तमाम रटंत-बोलोंकी उपेक्षा करते हुए हमें यह कहना ही पड़ेगा कि यह ठीक नहीं हो रहा है। हम भारतवासियोंके लिए उघड़े-बदन रहना कतई शरमकी बात नहीं; और अगर किसी सभ्य व्यक्तिकी निगाह इसे न बर्दाश्त कर सके तो समझना चाहिए कि वह अपनी आँखें ही खो बैठा है।

शरीरके लिए जैसे कपड़े-जूते-मोजे हैं, हमारे मनके लिए पुस्तकें भी ठीक वैसी ही हो उठी हैं। अब तो हम यह भूल-से गये हैं कि पुस्तक पढ़ना शिक्षाका फकत एक सहूलियतका सहारा भर है, और कुछ नहीं। अब तो हम पुस्तक पढ़नेको ही शिक्षा का एकमात्र उपाय समझ बैठे हैं। इस विषयमें हमारे संस्कारको डिगाना या बदलना बहुत ही मुश्किल हो गया है।

गुरु या शिक्षक किताब हाथमें लेकर बचपनसे ही हमें किताब रटाना शुरू करा देते हैं। लेकिन पुस्तकमेंसे ज्ञान लेना हमारे मनका स्वाभाविक धर्म नहीं। हमारी मनन-शक्तिका स्वाभाविक नियम यही था कि प्रत्यक्ष चीजको देख-सुनकर हिला-डुलाकर बहुत ही आसानीसे वह उसकी जानकारी हासिल कर लिया करती थी। दूसरोंके द्वारा अनुभूत और परीक्षित ज्ञानको लोगोंके मुँहजबानी सुननेके बाद तब-कहीं हमारा पूरा मन उसे पूरी तरह समझ पाता है। कारण, मुंहकी बात तो कोरी बात ही नहीं होती, वह असल बात होती है; उसमें प्राण होते हैं, आँख और मुंहका भाव होता है, कंठके स्वरका उतार-चढ़ाव होता है, हाथोंका इशारा होता है, जिससे कानसे सुननेकी भाषाको संगीत और

आकार मिल जाता है ; वह आँख और कान दोनोंकी चीज बन जाती है। सिर्फ इतना ही नहीं, हम अगर जान जायँ कि मनुष्य अपने मनकी चीज तुरत ही मनसे निकालकर हमें दे रहा है, वह सिर्फ किताब पढ़कर ही नहीं सुना रहा, तो एक मनके साथ दूसरे मनके प्रत्यक्ष सम्मेलनसे यानी रूबरू मेल-मिलापसे उस ज्ञानमें रसका संचार होने लगता है।

परन्तु दुर्भाग्यवश हमारे शिक्षक पुस्तक पढ़ानेके एक उपलक्ष्य मात्र हैं, और हम भी पुस्तक पढ़नेके एक उपसर्ग (अव्यय शब्दके समान) या सहारा लेनेवाले हैं। इससे नतीजा यह होता है कि हमारा शरीर जैसे कृत्रिम चीजोंकी आड़में रहकर पृथिवीके साथ अपना सम्बन्ध खो बैठा है, और उसे खोकर ऐसा आदी बन गया है कि उस सम्बन्धको अब कष्टदायक और लज्जाजनक समझने लगा है, उसी तरह हमारे मन और बाहरकी चीजोंके बीच किताब आ जानेसे हमारा मन भी दुनियाके साथ प्रत्यक्ष सम्बन्धकी स्वाद-शक्तिको बहुत-कुछ खो बैठा है। सभी चीजोंको किताबमेंसे समझनेका एक अस्वाभाविक अभ्यास हममें जमकर बैठ गया है। आँखके सामने जो चीज पड़ी हुई है उसे जाननेके लिए भी हमें किताबका मुँह ताकना पड़ता है। एक नवाबका किस्सा है। जूते सीधे करानेके लिए नौकरकी बाट देखता-देखता बेचारा दुश्मनोंसे घिर गया और कैद कर लिया गया। किताबी शिक्षाने आज हमारे मनको ठोंक पीटकर नवाब बना दिया है। छोटे-से-छोटे विषयके लिए भी हमारा मन किताब-खानसामेको ढूँढ़ता फिरता है, उसके बिना

हमारे मन और बुद्धिको अपने अन्दर अँधेरा-ही-अँधेरा दिखाई देता है। और मज़ा यह कि विकृत संस्कारोंके दोषसे इस तरहकी नवाबी हमारे लिए लज्जाजनक न होकर गौरवजनक हो जाती है! किताबके ज़रिये जाननेको ही हम पाण्डित्य समझकर उसका गर्व करते हैं! जगतको हम मनसे नहीं छूते, किताबसे छूते हैं।

इस बातको हम मानते हैं कि मनुष्यके ज्ञान और भावोंको पुस्तकोंमें इकट्ठा करना एक बड़ी-भारी सहूलियत है; पर उस सहूलियतसे मनकी स्वाभाविक शक्तिको बिलकुल ढक देना बुद्धिको 'रईस' बना देना है। 'रईस' नामका जीव नौकर-चाकर और चीज-वस्तकी सहूलियतोंका गुलाम होता है। अपनी कोशिश या उद्यमके प्रयोगमें जो-कुछ तकलीफ है, जो-कुछ कठिनाई है, उतने ही से हमारा सुख सत्य होता है और हमारा लाभ कीमती हो जाता है; 'रईस' इस बातको नहीं समझता। किताबी रईसोंका भी यही हाल है, मनके लिए खुद अपनी ताकतसे ज्ञान प्राप्त करनेका जो एक तरहका आनन्द है और सत्यको उसकी अपनी जगह कठिन प्रेमाभिसारके द्वारा प्राप्त करनेकी जो एक तरहकी सार्थकता है, वह उसे नहीं हासिल होती। और क्रमशः मनकी वह स्वाभाविक स्वाधीन-शक्ति ही मर जाती है। लिहाजा अपनी शक्तिको काममें लानेका वह सुख भी नहीं रहता, बल्कि इसके लिए मजबूर किये जानेपर वह दुःखका ही कारण बन जाता है।

इस तरह, हमारा मन बचपन ही से पुस्तक पढ़नेके 'ढक्कन'से ढका रहनेके कारण हम मनुष्यके सहज-स्वाभाविक भावसे मिलने-

जुलनेकी अपनी शक्तिको खो रहे हैं। हमारे कपड़ोंसे लदे शरीरमें जैसा एक संकोच-सा उत्पन्न हो गया है, हमारे मनमें भी वही बात आ गई है, यानी वह बाहर आना ही नहीं चाहता। हम गौरसे देखें तो मालूम होगा कि लोगोंके साथ सहज-स्वाभाविक बरताव करना और उनसे अपनेपनके साथ मिलकर बातचीत करना हमारे शिक्षित समुदायके लिए क्रमशः कठिन होता जा रहा है। हम किताबके आदमीको पहचानते हैं, दुनियाके आदमीको नहीं पहचानते ; किताबी आदमी हमारे लिए प्रिय है और संसारका आदमी हमारा कोई नहीं ! हम बड़ी-बड़ी सभाओंमें व्याख्यान दे सकते हैं, पर साधारण लोगोंसे बातचीत नहीं कर सकते। जब कि हम बड़ी बातों यानी किताबकी बातोंकी चर्चा कर सकते हैं और स्वाभाविक बातचीत या मामूली बातें हमारे मुंहसे ठीक तौरसे नहीं निकलतीं, तो समझना होगा कि दैव-जोगसे हम पण्डित शिक्षक या उपदेशक तो हो गये हैं, पर हमारा भीतरका आदमी मर गया है। आदमीके साथ आदमीके रूपमें हमारा बे-रोकटोक चलन-व्योहार रहे और आपसमें हम घरकी बात, सुख-दुखकी बात, बाल-बच्चोंकी बात, रोजमर्राके कामकी बात करें तो वह हमारे लिए आसान और आरामदे हो। किताबके आदमी बनावटी बात करते हैं, वे जिन बातोंपर हँसते और रोते हैं वे दरअसल हास्यरस और करुणरसकी बातें होती हैं; किन्तु सचमुच का आदमी रक्त-मांसका बना प्रत्यक्ष जीता-जागता आदमी है और वहीं उसकी जबरदस्त जीत है, इसलिए उसकी बात, उसका हँसना-रोना किताबके आदमीके जोड़का अव्वल नम्बरका न

होनेपर भी काम चल सकता है। लिहाजा वहाँ आपसके चलन-व्योहारमें, आपसकी बातचीतमें, वह सहज-स्वाभाविकसे बढ़कर ज्यादती करनेकी कोशिश न करे तो सुखी हो सकता है। असलमें 'आदमी' जब 'किताब' बन जानेकी कोशिश करता है तो उसमेंसे आदमीका अपना स्वाद जाता रहता है।

चाणक्य कह गये हैं कि 'जिनमें विद्या नहीं वे सभामध्ये न शोभन्ते।' परन्तु सभा तो हर-हमेश नहीं रहती। कभी-न-कभी तो सभापतिको धन्यवाद देकर उसकी बत्ती बुझा ही दी जाती है। मुश्किल तो यह है कि हमारे देशके आजके विद्वान 'सभाके बाहर न शोभन्ते'। वे किताब पढ़नेकी चहारदीवारीमें आदमी हैं, इसीसे आदमियोंमें उन्हें चैन नहीं मिलता।

ऐसी हालतका स्वाभाविक परिणाम है निरानन्द। एक अजीब तरहकी मानसिक बीमारी यूरोपके साहित्य और समाजमें सर्वत्र फैलती जा रही है; उस देशके लोग इस बीमारीको 'World-weariness' (विश्व-अवसाद या दुनियवी थकान) कहते हैं। असलमें, आदमीकी स्नायु विकृत हो गई है, जीवनका स्वाद चला गया है। नई-नई उत्तेजनाएँ पैदा करके वहाँ अपनेको भुलाये और बहलाये रखनेकी कोशिश चल रही है। यह बीमारी, यह विकृति कैसी है और क्यों है, कुछ भी समझमें नहीं आता। यह थकानकी बीमारी स्त्री-पुरुष दोनोंकी नस-नसमें समा गई है, और इसका प्रकोप इतना व्यापक हो गया है कि इलाज करनेवाले भी इससे नहीं बच पाये।

इसका कारण है क्रमशः हमारा स्वभावसे बहुत दूर चला

जाना। बनावटी सहूलियतोंने उत्तरोत्तर आसमान तक बढ़कर जगतके जीवोंको जगतसे जुदा कर दिया है। हमारा मन पोथियों के ढेरमें और शरीर असबाबकी भरमारसे दब गया है, जिससे हमें अपनी आत्माके दरवाजे-जंगले बिलकुल दिखाई ही नहीं देते। जो सहज है, स्वाभाविक है, नित्य है, जो मूल्यहीन होनेसे सबसे बढ़कर मूल्यवान है, उसके साथ परिचय और आवागमन या आना-जाना बन्द हो जानेसे उसके ग्रहण करनेकी शक्ति भी हममेंसे जाती रही है। जो चीजें उत्तेजनाकी नई-नई ताड़नाओंसे उद्भावित होकर दो-चार दिन फैशनके भँवरमें पड़ कर गँदली हो जाती हैं और उसके बाद ही बेइज्जतसे कूड़ेमें जमा होकर समाजकी हवाको दूषित कर देती हैं, सिर्फ वे ही चीजें बार-बार सम्पूर्ण-समाजके लाखों गुणवानोंकी कोशिशों और मजदूरोंके उद्योग-उद्यमको कोल्हूके बैलकी तरह घुमा-घुमाकर मार रही हैं।

एक पुस्तकसे दूसरी पुस्तक पैदा हो रही है, एक काव्य-ग्रन्थसे और-एक काव्य-ग्रन्थका जन्म हो रहा है ; एक आदमीका मत मुँहजबानी हजारों आदमियोंका मत हुआ जा रहा है, नकलसे नकलका स्रोत बहता चला जा रहा है और इस तरहसे पोथी और बातोंका जंगल आदमीके चारों ओर गहनसे गहनतर होता जा रहा है, प्राकृतिक जगतके साथ इसका सम्बन्ध क्रमशः दूर होता चला जा रहा है। मनुष्यके मनमें बहुतसे भाव उत्पन्न हो रहे हैं जो सिर्फ किताबोंकी पैदाइश है। ये सब वास्तवता-शून्य भाव भूतकी तरह आदमीके सिर हो जाते हैं, उसके मनकी सेहतको

बिगाड़ डालते हैं, उसे अत्युक्ति और अतिकी ओर खींच ले जाते हैं। हम सब मिलकर लगातार एक ही टेकको पकड़के बनावटी उत्साहमें सचाईकी सत्ताको नष्ट करके उसे झूठ बना देना चाहते हैं। मिसालकी तौरपर, पैट्रियॉटिज्म (देशभक्ति) नामकी चीजको पेश किया जा सकता है। इसमें जो-कुछ सत्य था, दिन-पर-दिन सब मिलकर रुईकी तरह धुन-धुनके हम उसे एक जबरदस्त झूठ बनाये दे रहे हैं। आज इस बनावटी रटंत-बोलको जी-जानकी कोशिशसे सत्य बनानेके लिए कितने बनावटी तरीकों, कितनी बेबुनियाद सर-गरमी, कितनी अनुचित शिक्षा, कितने मनगढ़न्त विद्वेष, कितनी कूट युक्तियों और कितने छलोंकी सृष्टि हो रही है, उनकी न हद है, न गिनती। इन सब स्वभाव-भ्रष्ट कुहरा या भ्रान्तियोंसे मनुष्य विभ्रान्त हो जाता है; सरल और उदार, प्रशान्त और सुन्दरसे वह बराबर दूर होता जाता है।

परन्तु रटंत-बोलोंका मोह छोड़ना आसान काम नहीं। कोई 'चीज' हो, तो उसपर हमला करके उसे धूलमें मिलाया जा सकता है; पर रटंत-बोलके बदनपर तलवार नहीं चलाई जा सकती। यही कारण है कि इन बोलोंके पीछे आदमी आदमीमें जितना झगड़ा और जितनी खूनखराबियाँ हुई हैं उतनी धन-दौलतके लिए भी नहीं हुईं।

समाजकी सरल अवस्थामें हम देखते हैं कि लोग जितना जानते हैं उतना मानते भी हैं, और उतनेपर उनकी श्रद्धा या विश्वास अटल है। उसके लिए त्याग स्वीकार करना और कष्टोंका सामना करना उनके लिए सहज-स्वाभाविक है। इसके कितने ही कारण हैं;

किन्तु एक मुख्य कारण यह है कि उनके हृदय-मन मतोंके 'ढक्कन' से ढक नहीं गये हैं; जितनेको सच समझकर ग्रहण करनेकी ताकत और हक है उनमें, उतनेको ही उन लोगोंने अपनाया है। मन जिसे सत्य-रूपमें अपनाता है और हृदय जिसके लिए अनेक दुःख आसानीसे सह सकता है उसे वे बहादुरीका काम समझते ही नहीं।

पर सभ्यताकी जटिल अवस्थामें देखा जाता है कि मतोंका काफी ऊँचा ढेर जम गया है। कोई चर्चका मत है, किन्तु चर्चाका मत नहीं; कोई सभाका मत है किन्तु घरका मत नहीं; कोई दलका मत है किन्तु हृदयका मत नहीं; किसी मतमें आँखोंसे आँसू तो निकल आते हैं, पर गाँठसे रुपये नहीं निकलते; किसी मतमें रुपये भी निकल आते हैं और काम भी चलता है, पर हृदयमें उसके लिए जगह नहीं, फैशनमें उसकी प्रतिष्ठा है। इन सब लगातार उत्पन्न होनेवाले ढेरके ढेर सत्य-विकारोंके बीच पड़कर आदमीका मन सत्य-मतको भी दृढ़ सत्यके रूपमें नहीं अपना पाता। इसीलिए उसका आचरण सब जगह सब तरफसे सत्य नहीं होने पाता। सरल भावसे अपनी शक्ति और प्रकृतिके अनुसार कोई पन्थ चुन लेनेका उसे मौका नहीं मिलता और तब विभ्रान्त-भावसे पाँच-जनोंकी कही बातको दुहराता रहता है; और अन्तमें काम पड़नेपर उसकी खुदकी प्रकृतिमें विरोध उठ खड़ा होता है। वह अगर अपने स्वभावको आप पा जाता, तो उस स्वभावके भीतरसे जो-कुछ उसे मिलता वह चीज चाहे छोटी हो या बड़ी, होती सच्ची और असली चीज। वह उसे पूरा

बल देती, पूरी शक्ति देती, पूरा आश्रय देती; और तब वह उसे पूरी तौरसे काममें बगैर लगाये न मानता। अब उसे गड़बड़में पड़कर पुस्तकोंका मत, बातोंका मत, सभाका मत, दलका मत ढोते हुए अपने ध्रुवसे लक्ष्यभ्रष्ट होकर सिर्फ बहुतसे रटन्त-बोल दुहराते फिरना पड़ रहा है; और इसी बोल दुहराते-फिरनेको वह अपना या दूसरेका हित या कल्याण समझता है। इसके लिए उसे वेतन मिलता है, उन बोलोंको बेचकर वह मुनाफा करता है; इन सब बोलोंके जरासे इधर-उधर या हेर-फेरको लेकर वह दूसरे सम्प्रदाय और दूसरे राष्ट्र या जातियोंको हेय और अपने सम्प्रदाय और अपनी जातिको श्रद्धेय साबित करके उसका प्रचार करता है।

मनुष्यके मनके चारों तरफ यह जो पुस्तकोंके वन जङ्गलमें बोलोंके बौर लगे हैं उनकी मादक गन्ध हम लोगोंको मतवाला बनाये दे रही है; इधरसे उधर और उधरसे इधर दौड़ा-दौड़ाकर वह हमें बार-बार परेशान और हैरान किये मारती है; किन्तु यथार्थ आनन्द और गम्भीर तृप्ति या शान्ति नहीं देती, बल्कि हममें नाना प्रकारके विद्रोह और मनोविकार उत्पन्न करती रहती है।

सहज-स्वाभाविक चीजका गुण यह है कि उसका स्वाद कभी भी पुराना नहीं पड़ता, उसकी सरलता उसे हमेशा नई बनाये रखती है। जो असल स्वभावकी बात है उसे आदमीने जितनी बार भी कहा है, उतनी ही बार वह नई मालूम हुई है। संसारमें दो-ही-तीन महाकाव्य हैं जो हजारों वर्षोंमें भी म्लान नहीं हुए, निर्मल जलकी तरह वे हमारी प्यास बुझाकर हमें तृप्ति देते रहते हैं,

शराबकी तरह वे हमें उत्तेजनाकी चोटी तक चढ़ाकर वहाँसे एकदम सूखी 'थकानकी चट्टान' पर पटकके मार नहीं डालते। सहज-स्वाभाविकसे दूर पहुंचते ही हमें एक बार उत्तेजना और एक बार थकानकी ओखलीमें बराबर कुटना पड़ रहा है। उपकरण-बहुल यानी असबाबोंकी नींवपर खड़ी हुई अति-सभ्यतामें यही रोग है।

इसमें सन्देह नहीं कि जंगलके भीतरसे राह निकालकर इन ढेर-की-ढेर पुस्तकों और वचनोंका व्यूह भेदकर, समाजमें, आदमीके मनमें स्व-भावकी हवा और स्व-भावका उजाला लानेके लिए किसी महापुरुषकी, और शायद महाक्रान्तिकी भी, जरूरत होगी। सम्भव है कि अत्यन्त सहज-स्वाभाविक सत्यको, बहुत ही सरल सच्ची बातको, खूनका समुद्र पार करके आना पड़े। जो आकाशकी भाँति व्यापक है, जो हवाकी तरह बिना कीमतका है, उसे खरीद कर लानेके लिए सम्भव है कि हमें प्राण तक देने पड़ें। यूरोपके मनोराज्यमें भूकम्प और ज्वालामुखीकी अशान्ति बीच-बीचमें अक्सर दिखाई दिया करती है; स्वभावके साथ जीवनका और बाहरी प्रकृतिके साथ अन्तःप्रकृतिका जबरदस्त असामञ्जस्य यानी फर्क ही इसका कारण है।

परन्तु यूरोपका यह विकार या विकृति हममें सिर्फ नकलके द्वारा, सिर्फ छूत लग जानेसे, आ रही है। यह हमारे देशकी पैदाइश नहीं है। हम बचपन ही से विलायती किताबें रटनेमें लग गये हैं; जो कूड़ा-करकट है, नुकसानकी चीज है, उसे भी हम मुनाफा समझकर ले रहे हैं। हम जिन-सब विलायती बोलियोंको हमेशा असन्दिग्ध-मनसे श्रद्धाके साथ काममें लाते चले आ रहे हैं,

हम जानते ही नहीं कि उनमें से हरएकको अविश्वासके साथ आदि-सत्यकी कसौटीपर कसकर जाँच लेना चाहिए; उनमें बारह आना हिस्सा सिर्फ किताबी पैदाइश है, जोकि सिर्फ मुँहजबानी ही बढ़ती ही चली जा रही हैं, पाँच-जने परस्पर एक दूसरेकी नकल करके कह रहे हैं, और इसीलिए और पाँच-जने उसे अटल या ध्रुव-सत्य समझते जा रहे हैं! हम भी उन बँधी गतोंको इस तरह काममें ला रहे हैं, गोया उनका सत्य हमने ढूँढ़ निकाला हो। मानो वह विदेशी स्कूल-मास्टरके रटन्त-कथनकी जड़-प्रतिध्वनि नहीं है!

और फिर, जो नया पाठ रटता है उसका उत्साह भी कुछ ज्यादा हुआ करता है। सुशिक्षित तोता जितने ऊँचे स्वरसे बोलकर कानोंके परदे फाड़ा करता है, उसके शिक्षकका गला उतना ऊँचा नहीं होता। सुनते हैं, जिन राष्ट्रों या समाजमें विलायती सभ्यता नई-नई प्रवेश करती है वे विलायतकी शराब अख्तियार करके बिलकुल मरनेकी तैयारियाँ कर लेते हैं; और तमाशा यह कि जिनकी नकल करके वे शराब शुरू करते हैं वे खुद नशेमें इतने चूर नहीं होते। इसी तरह देखा जाता है कि उन बोलियोंके मोहसे खुद उनके बोलनेवाले (जन्मदाता) बहुत-कुछ शान्त रहते हैं, पर हमारा यानी नकल करनेवालोंका यह हाल कि मारे श्रद्धाके हम जमीनपर लोटने लगते हैं! एक दिन, अखबारमें देखा कि विलायतकी किसी एक सभामें हमारे देशी आदमी एकके बाद एक उठ-उठकर 'भारतवर्षमें स्त्री-शिक्षाका अभाव और उसकी पूर्ति' के विषयमें बहुत ही पुरानी विलायती बोली, अड्डेपर बैठे तोतेकी

तरह, बोलते चले गये; सब सुन-सुनाकर अन्तमें एक अंग्रेज उठा और उन वक्ताओंके इस वक्तव्यपर कि भारतवर्षकी लड़कियोंको सब-कुछ अंग्रेजी कायदेसे सिखाना ही एकमात्र शिक्षा कहलाने योग्य है और वही शिक्षा हमारी स्त्रियोंके लिए एकमात्र श्रेय है, सन्देह प्रकट किया। दोनों पक्षोंके तर्कके सत्य-असत्यके विषयमें मैं कुछ नहीं कहना चाहता। मेरा तो सिर्फ इतना ही कहना है कि विलायतमें प्रचलित 'पद्धति' और 'मत' की नकल करना हनूमानके गन्धमादन पर्वतको जड़से उखाड़ लानेके समान है। इस विषयमें हमारे मनमें जरा विचार तक उपस्थित नहीं होता. इसका कारण यह है कि बचपनसे वे सब बातें हमने पुस्तकोंसे ही सीखी हैं और हमारी जो कुछ शिक्षा है वह भी सब किताबी शिक्षा है।

बोली और पोथीके बिलमें घुसनेके बाद हमारे देशमें भी शिक्षित लोगोंमें निरानन्द और अशान्ति ही देखनेमें आ रही है। न-जाने कहाँ चली गई वह सहृदयता और मेल-जोल! कहाँ चला गया वह स्वाभाविक हँसी-खेल! जीवन-यात्राका भार बढ़ जानेके कारण ही इतनी थकान आ गई हो सो बात नहीं। यह भी एक कारण है, इसमें सन्देह नहीं, किन्तु दूसरा कारण भी है; और वह है हमारे साथ सब तरहके सामाजिक सम्बन्ध-हीन आत्मीयता-शून्य राज-शक्तिका दिन-रात अदृश्य दबाव। और साथ ही, हमारी अत्यन्त कृत्रिम शिक्षा-पद्धतिकी अस्वाभाविक ताड़ना भी कम कारण नहीं है। बिलकुल बचपन ही से विदेशी राजशक्तिकी चक्कीमें बच्चोंके दिमागकी पिसाई शुरू होती है, उस पढ़ाईके साथ मनका मेल बहुत कम हो पाता है। यह शिक्षा

आनन्दके लिए नहीं, सिर्फ ज्ञान बचानेके लिए है ; और कुछ-कुछ सम्मान-रक्षाके लिए भी।

हम मनसे काम लेकर सजीव भावसे जो ज्ञान या शिक्षा लेते हैं वह हमारी हड्डियोंमें भिद जाता है ; लेकिन पुस्तकें रटकर जो पाते हैं वह बाहर इकट्ठा हो-होकर सबके साथ जो हमारा विच्छेद कराता रहता है उसे हम किसी भी तरह भूल नहीं सकते ; इसीसे अहंकार बढ़ जाता है, और उस अहंकारका सुख या तसल्ली ही हमारी जीवनयात्राका एकमात्र तोशा या पूंजी है। नहीं-तो, ज्ञानका स्वाभाविक आनन्द अगर हमें मिलता तो इतने शिक्षित लोगोंमें कम-से-कम कुछ तो ऐसे दिखाई देते जो ज्ञान-चर्चाके लिए अपना सम्पूर्ण स्वार्थ त्याग देते। मगर, हम देखते यह हैं कि विज्ञानकी परीक्षामें अच्छी योग्यता प्राप्त करनेके बाद भी लोग डिप्टी मजिस्ट्रेट होकर अपनी सारी विद्याको कानून और अदालतकी अथाह निरर्थकतामें हमेशाके लिए डुबो देनेके लिए व्यग्र हैं ; और ज्ञानकी कईएक डिग्रियाँ पानेके बाद भी सिर्फ किसी कन्याके भाग्यहीन पिताको कर्जके दलदलमें फँसा मारना ही उनकी एक कीर्ति बनकर रह जाती है। देशमें बड़े-बड़े शिक्षित वकील बैरिस्टर, जज मजिस्ट्रेट और क्लार्कोंका अभाव नहीं है, मगर मैं पूछता हूं ज्ञानके तपस्वी कितने हैं और कहाँ हैं ?

बातों-बातोंमें बात बहुत बढ़ गई। फिलहाल हमारा जो कुछ वक्तव्य है वह यह है कि बच्चोंके मनमें ऐसा अन्ध-संस्कार तो कभी पैदा ही न होने देना चाहिए कि 'किताबोंका पढ़ना ही शिक्षा है।' हमारा फर्ज है कि हम उन्हें यह बात कदम-कदमपर जताते रहें

कि प्रकृतिके जिस अक्षय-भंडारसे पुस्तकोंकी विषय-वस्तुका संचय किया है, कम-से-कम होना यही चाहिए, वहाँ उस प्रकृतिके भण्डार पर हमारा भी हक है, और हम चाहें तो उसमेंसे खुद भी कुछ-न-कुछ ले सकते हैं। किताबोंका ऊधम बहुत ज्यादा बढ़ गया है और इसीलिए ज्यादा जरूरत है जताने और बतानेकी। इस देशमें, प्राचीन कालमें जब कि लिपि प्रचलित थी तब भी तपोवनमें पोथियोंका चलन नहीं हुआ। उस जमानेमें भी गुरु अपने शिष्योंको मुँहजबानी ही शिक्षा देते थे और छात्र उसे कापीमें नहीं बल्कि मन ही में लिख लिया करते थे। इस तरह एक दीआसे दूसरा दीआ जलता था। अब ठीक वैसा तो नहीं हो सकता, किन्तु फिर भी जहाँ तक बने, छात्रोंके मनको हमें किताबोंके हमलेसे बचाना ही चाहिए। जहाँ तक बने छात्रोंको सिर्फ दूसरोंकी ही रचना नहीं पढ़ने देना चाहिए बल्कि वे जो-कुछ गुरुसे सीखें उसकी रचना उन्हें स्वयं अपने हाथसे कर लेना चाहिए, और वह स्वरचित ग्रन्थ ही उनका पाठ्य ग्रन्थ होना चाहिए। ऐसा होनेसे उनकी ऐसी धारणा हरगिज नहीं बन सकती कि 'ग्रन्थ आकाशसे गिरे हुए वेद-वाक्य हैं'। ऐसी-ऐसी बातें हमने पुस्तकोंमें ही पढ़ी हैं कि 'आर्यगण मध्य-एशियासे भारतमें आये हैं', 'ईसाके दो हजार वर्ष पहले वेदोंकी रचना हुई है' इत्यादि। पुस्तकोंके अक्षर बिना काट-छाँटके निर्विकार हैं, वे बचपनसे हमपर सम्मोहनका प्रयोग करते आये हैं, इसीसे हमारे लिए आज ऐसी बातें बिलकुल देव-वाणीके समान है। किन्तु लड़कोंको शुरूसे ही जान लेना चाहिए या उन्हें जता देना चाहिए कि ये सब अटकलकी बातें हैं और

सिर्फ कुछ युक्तियोंपर ही निर्भर करती हैं। हमें उन सब युक्तियोंकी मूल वस्तुओंको यथासम्भव उनके सामने रखकर उनमें उनकी निजी अनुमान-शक्तिको चेताना ही चाहिए। किताबें किस तरह बनती हैं इस बातका धीरे-धीरे उन्हें अपने मनमें अनुभव या महसूस करते रहने देना चाहिए। तभी उनके मनकी भूख मिटेगी और किताब पढ़नेका असल नतीजा उन्हें मिल सकेगा। साथ ही अन्ध-शासनसे भी बेचारे छुटकारा पा सकेंगे, और अपने स्वाधीन उद्यमके द्वारा ज्ञान प्राप्त करनेकी उनमें जो स्वाभाविक मानसिक शक्ति है वह बाहरसे सिरपर लादी हुई विद्यासे अच्छादित और प्रभावित नहीं होगी, बल्कि पुस्तकोंपर उनके मनका कर्तृत्व बना रहेगा। बालक थोड़ा भी जो-कुछ सीखेगा उसी समय उसका प्रयोग करना भी सीखता जायगा; और तब शिक्षा उसके सरपर न सवार होगी बल्कि वही शिक्षापर सवार होगा।

बहुतसे लोग ऐसे मिल जायगे जो इस विषयमें अपनी सम्मति-सूचक राय देनेमें दुबिधा नहीं करेंगे, लेकिन अमल होते ही इसके खिलाफ बोलनेमें भी वे नहीं चूकेंगे। असलमें वे समझते हैं कि लड़कोंको इस तरह शिक्षा देना असम्भव है। हाँ, जिसे वे शिक्षा कहते हैं उसका इस तरह दिया जाना है भी असम्भव; क्योंकि वे कुछ किताबें और कुछ विषय बाँध देते हैं, निर्दिष्ट समयके भीतर निर्दिष्ट पद्धतिसे उनकी परीक्षा ली जाती है और इसीको वे शिक्षा देना कहते हैं; और जहाँ ऐसी शिक्षा दी जाती है उसीको विद्यालय कहा जाता है। 'विद्या' चीज मानो आदमीके मनसे कोई अलग चीज हो, इसलिए मनसे गोया उसे अलग करके

देखना चाहिए, मानो वह किताबोंके पन्ने और अक्षरोंकी संख्या हो ! उससे छात्रोंका मन भले ही पिस जाय, उनका मन किताबों का गुलाम भले ही हो जाय, भले ही उनकी स्वाभाविक बुद्धि रटंत बोलोंके आगे हार मंजूर करके किताबोंका कीड़ा बन जाय, भले ही वे अपनी निजी स्वाभाविक शक्तियोंको काममें लाकर ज्ञान अर्जन करनेकी खास अपनी शक्तिको अनभ्यास और उत्पीड़नके कारण हमेशाके लिए खो दें, तो भी वह 'विद्या' ही कहायेगी ! उसमें इतना इतिहासका अंश है, इतने भूगोलके पन्ने हैं, इतना गणित है और इतना बी-एल-ए 'ब्ले' है और सी-एल-ए 'क्ले' है ! यह क्या तमाशा है ?

असलमें लड़कोंका मन जितनी शिक्षापर पूरी तरह कर्तृत्व प्राप्त कर सकता है, थोड़ी होनेपर भी, उतनी शिक्षा ही शिक्षा है; और जो शिक्षा शिक्षाके नामपर मनको ढक देती है उसे पढ़ना कहा जा सकता है, सीखना हरगिज नहीं। आदमी आदमीपर तरह-तरहके जुलम करेगा इतना समझकर ही विधाताने उसे इतनी मजबूतीसे बनाया है, और यही वजह है कि आदमी मुश्किलसे पचनेवाली अभक्ष्य चीजें खाकर कब्जकी बीमारी झेलता हुआ भी जिन्दा बना रहता है ; और बचपनसे शिक्षाका दु:सह उत्पीड़न सहकर भी वह थोड़ी-सी विद्या भी प्राप्त कर लेता है और उसपर गर्व भी कर सकता है। इस ताड़न और पीड़नकी वजहसे उसे कितना नुकसान उठाना पड़ता है ; और शिक्षाके बाजारसे कितनी जबरदस्त कीमत देकर वह कितना थोड़ा माल घर ला पाता है, इस बातको कोई तो समझते ही नहीं, कोई समझते भी हैं तो मंजूर नहीं करते, कोई समझते और मंजूर भी करते है, पर काम पड़नेपर जैसा चलता आ रहा है वैसा ही चलाते रहते हैं।

रवीन्द्र-साहित्य

[प्रत्येक भाग सजिल्द : कीमत २।) सवा दो रुपया]

पहले भागमें है एक उपन्यास पाँच कहानियाँ :—

'दो बहन' उपन्यास ; और 'घाटकी बात', 'कंकाल', 'स्वर्णमृग', 'बदलीका दिन' और 'सौगात' ये पाँच कहानियाँ ; और अन्तमें 'हिन्दू-मुसलमान' शीर्षक एक सुन्दर निबन्ध।

दूसरे भागमें हैं दस कहानियाँ :—

'प्राण-मन', 'प्यासा पत्थर', 'दृष्टिदान', 'चन्ना फू:', 'जिन्दा और मुरदा', 'एक रात', 'एक बरसाती कहानी', 'मुक्तिका उपाय', 'दुलहिन' और 'चितवन'।

तीसरे भागमें हैं ग्यारह कहानियाँ :—

'सड़ककी बात', 'दालिया', 'त्याग', 'निशीथमें', 'मणिहीन', 'सुभा', 'सम्पादक', 'छोटी-सी पुरानी कहानी', 'दुराशा', 'देन-लेन' और 'कहानी'।

चौथा भाग आपके हाथमें है : पाँचवाँ भाग छप रहा है।

हर तीसरे महीने एक-एक भाग प्रकाशित होता रहेगा।

अनुवादक और प्रकाशक

धन्यकुमार जैन : 'हिन्दी-ग्रन्थागार'

पी-१५, कलाकार स्ट्रीट, बड़ाबाजार, कलकत्ता-७